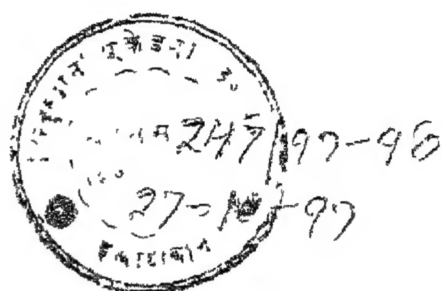
कि शीतथानी प्रति



उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान के सौजन्य से

अनुवाद प्रक्रिया

अनुवाद प्रक्रिया

डॉ० रीतारानी पालीवाल
एम०ए० (हिंदी-अंग्रेजी), पी०एच०डी० (हिंदी)
रीडर
हिंदी विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय
मुक्त विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली

ललित , दिल्ली

प्रकाशक : ललित प्रकाशन
29/59-ए, गली नं० 11, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110032

मूल्य 125-00 रुपये

निवेदन

'अनुवाद प्रक्रिया' में मेरे पिछले तीन-चार वर्ष के लेख संकलित है। इन लेखो में समग्रता मे अनुवाद की प्रक्रिया, प्रविधि एवं समस्याओ पर व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अनुवाद की आवश्यकता देश-विदेश मे प्राचीनकाल से लेकर अब तक लगातार महसूस की जाती रही है और आज तो इस कार्य की महत्ता असदिग्ध है। नवीन ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान मे अनुवाद की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मेरे मन मे अनुवाद-कार्य के प्रति निष्ठा एव समर्पण का भाव रहा है। ऐसी स्थिति में अनुवाद कार्य करते हुए जो धारणाए मेरे मन मे निर्मित होती रही है उन्हे ही इस पुस्तक में मुक्त रूप से व्यक्त किया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक अनुवाद के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो पक्षो का निरूपण करती है। व्यक्तिगत रूप से मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने मुझे सामग्री तथा सवाद से समृद्ध किया है।

जून, 1982

—रीतारानी पालीवाल

पुनश्च

अनुवाद प्रक्रिया का दूसरा सस्करण आपके हाथो मे सौपते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। पाठको ने इस पुस्तक का जिस आदर से स्वागत किया है वह अनुवाद से संबंधित प्रश्नो और जटिलताओ से जूझने और उनका हल खोजने मे मेरे लिए प्रेरणा का काम करता रहा है। अनुवाद से सबधित मेरी अगली पुस्तक 'अनुवाद की सामाजिक भूमिका' इसी प्रेरणा का प्रतिफलन कही जा सकती है।

'अनुवाद प्रक्रिया' के पहले सस्करण मे छपाई की कुछ खटकने वाली अशुद्धिया रह गई थीं, जिन्हे यथा सभव सुधारने का प्रयास इस सस्करण मे किया गया है।

जुलाई 1992 —रीतारानी पालीवाल

15-ए, विश्वविद्यालय मार्ग, दिल्ली-9

विषय-सूची

अनुवाद क्या है ?

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ अनुवाद-कार्य का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। इस विस्तृत क्षेत्र को ध्यान मे रखते हुए अनुवाद-कार्य के लिए कहा जा सकता है किसी एक भाषा की ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी पाठ-सामग्री का दूसरी भाषा मे भाषान्तर या पुन. कथन अनुवाद है। अनुवादक को अनुवाद्य-सामग्री को स्रोत भाषा (Source Language) से लक्ष्य-भाषा (Target Language) मे सावधानी से पुनर्प्रस्तुत करना पडता है। एक भाषा मे दूसरी भाषा मे अंतरण और पुनर्प्रस्तुत का यह कार्य एक चुनौती भरा काम होता है। यह कार्य तमाम कठिनाइयो और चुनौतियो से भरा हुआ इसलिए माना जाता है कि प्रत्येक भाषा एक भिन्न प्रकृति एव परिवेश लेकर विकसित होती है। उसका सरचनात्मक गठन अपने स्वरूप और आयामो मे दूसरी भाषा से भिन्न अर्थ-स्तर का होता है। एक भाषा मे दूसरी भाषा की यह भिन्नता वाक्य, पद-बन्ध, वाक्य-रचना, ध्वनि, अर्थ-लय, शब्द-रूप, शब्द-गठन-विन्यास, रूप-विन्यास, अलकार, छन्द, लोकोक्ति-मुहावरो के प्रयोग की विधि एव सास्कृतिक-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अध्ययन से समझी-समझायी जा सकती है। प्रत्येक भाषा के इस निजी सास्कृतिक-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और प्रकृति परिवेशगत विशिष्टताओ के कारण अन्य किसी भाषा मे पूरी तरह उसी तरह की समग्र अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो पाती है।

यह कार्य स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता और लक्ष्य-भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता पर भी निर्भर करता है कि दोनो भाषाओ मे अपनी कितनी ताकत है। प्राय. लक्ष्य-भाषा मे स्रोत-भाषा की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को व्यक्त करने की क्षमता कम या ज्यादा रहती है। ऐसा होने के कारण अनुवाद कार्य मे घपला खड़ा हो जाता है। लक्ष्य-भाषा मे यदि स्रोत भाषा की शब्द-शक्तियो को पकड़ने की सही स्थिति न हुई तो भाषान्तर या व्याख्यात्मक आवृत्ति मे बडा अनर्थ हो जाता है। शब्द और अर्थ के अनर्थ से बचने के लिए भारतीय वैयाकरणो ने अभिधा, लक्षणा एव व्यजना नामक शब्द-शक्तियों पर विस्तार से विचार किया है। तीनो शब्द-शक्तिया के सूक्ष्म भेद प्रभेद को समझने के लिए इन तीन शब्द शक्तियो के

अनेकानेक भेद उदाहरण देकर प्रस्तुत किए हैं। शब्द और अर्थ की पारस्परिकता भिन्नता या स्वतंत्रता पर विचार करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि—'योऽय शब्द सोऽर्थः, योऽर्थः स शब्द' इति। शब्दार्थ के शक्तिवाद के लिए वैयाकरणों ने शब्द-चतुष्टयवाद (जाति, गुण, क्रिया एव यदृच्छा शब्द) का खुलकर पक्ष लिया है। अनुवाद के संदर्भ मे शब्द-शक्तियो की दृष्टि से यह अपेक्षित होता है कि किसी भी बात को पढ़-सुनकर स्रोत-भाषा का व्यक्ति जो अर्थ ग्रहण करे, वही लक्ष्य-भाषा को पढ-सुनकर भी ग्रहण करे या कर सके। अर्थ-ग्रहण के साथ बिम्ब-ग्रहण कराना भी भाषा का कार्य है और कथ्य को स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा मे अतरित करते समय अनुवादक से चूक नही होनी चाहिए। लक्ष्य-भाषा मे स्रोत-भाषा का समानार्थक अनुवाद सम्भव नही होता है, क्योकि स्रोत-भाषा की अर्थ-ध्वनिया, नादात्मक झंकारें तथा अनुकरणात्मक और अनुरणनात्मक सगतियो मे अभि-व्यक्तिगत अन्तर होता है। इसीलिए स्रोत-भाषा के अर्थ को लक्ष्य-भाषा या तो बढ़ाती है या सकुचित करती है, या घटाती है या सन्दर्भ-च्युत कर देती है या एकदम भिन्नार्थक स्थिति मे पहुंचा देती है। यही कारण है कि स्रोत-भाषा के अर्थ-सन्दर्भ को लक्ष्य-भाषा में ठीक वैसा का वैसा ला पाना सम्भव नही होता। अनुवादक सम्पूर्ण निष्ठा से दोनो के आस-पास की अर्थ-सम्भावनाओ मे अर्थ उजागर करता है। अत अनुवाद में समानार्थक नही, निकटार्थक स्थिति रहती है। अनुवाद एक प्रकार से समानता की कला न बनकर सम्भावनार्थक समझौते की कला है। स्रोत-भाषा के शब्दार्थ-सन्दर्भ से लक्ष्य-भाषा मे अधिकाधिक सन्निकटता स्थापित कर लेने वाला अनुवादक ही सही और निष्ठावान कर्मी है। इसी कोण से अनुवाद मे 'सम्पूर्णता' की माग एक गलत नारा बनकर रह जाती है क्योकि लक्ष्य-भाषा और स्रोत-भाषा के बीच काल-भेद, देश-भेद, जातीय-भेद आदि की दूरी या निकटता के प्रश्न का अनुवाद पर गहरा प्रभाव पडता है। शेक्सपियरियन ट्रेजेडी को आज बीसवी शताब्दी में हिन्दी-अनुवाद करते समय यही समस्या रहती है, जिसे शेक्स-पियर के नाटक 'हेमलेट' के कवि बच्चन द्वारा तथा 'मैकबेथ' के कवि रघुवीर सहाय द्वारा किए गए अनुवाद से समझा जा सकता है।

कोई व्यक्ति किसी भी ऐसे पाठ (Text) का अनुवाद नही कर सकता, जो उसकी पकड या समझ से बाहर हो। उसे विषय-वस्तु (Subject matter) विशेष की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। वह जिस भाषा से अनुवाद कर रहा है और जिसमे वह अनुवाद कर रहा है, उन दोनो की पर्याप्त पकड के साथ-साथ उसमे दोनो मे सोचने-विचारने और गहन चिन्तन करने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए। इसमें कोश एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते है, किन्तु वे विषय की समझ और चिन्तन की तर्क-शक्ति का स्थान नही ले सकते। यही कारण है कि नैसर्गिक प्रतिभा के धनी शब्द-खोजी अनुवादकों द्वारा किया गया अनुवाद बेहतर होता है

अनुवाद केवल स्रोत-भाषा के पाठ को लक्ष्य-भाषा के समानार्थको द्वारा प्रतिस्थापित करना ही नही है, बल्कि अनेक ऐसे सन्दर्भो और सास्कृतिक अर्थ-अभिप्रायो को लक्ष्य-भाषा मे अन्तरित करना भी है, जो लक्ष्य-भाषा की सस्कृति मे मौजूद ही नही है। यह कठिनाई इसलिए प्रखरता से उत्पन्न होती है कि सास्कृतिक अर्थ-अभिप्राय और अर्थ-गुच्छ स्रोत-भाषा मे ठीक वैसे के वैसे उपलब्ध नही होते है। किसी बिन्दु पर इन्हे अभिव्यक्त करना असम्भव-सा लगने लगता है। कठिनाई का मूल तो यही होता है कि स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा मे पूरी तरह समानता-परक या समान अभिव्यक्तिया उपलब्ध नही हो पाती। इस स्थिति से बचने के लिए अनुवादक कभी-कभार 'शार्ट-कट' खोजता है। वह स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा मे समानता लाने के चक्कर मे स्रोत-भाषा के ऐसे प्रयोग भी लक्ष्य-भाषा मे हू-ब-हू लाने की भयंकर भूल कर बैठता है, जो लक्ष्य-भाषा की अपनी प्रकृति मे स्वाभाविक नही लगते। ऐसे अनुवादक लक्ष्य-भाषा की सहजता को नष्ट करते हुए, कृत्रिमता का ससार रचते रहते है। जैसे अंग्रेजी का एक वाक्य है—'The man, who does not see that the good of every living creature is his own good, is a fool' 'वह आदमी, जो नही देखता कि प्रत्येक जीवधारी की भलाई उसकी अपनी भलाई है, मूर्ख है।' किन्तु यह हिन्दी का सहज वाक्य नही है। हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार यह वाक्य होना चाहिए . 'वह आदमी मूर्ख है जो प्रत्येक जीवधारी की भलाई मे अपनी भलाई नही देखता।'

इन कठिनाइयो से बचने के लिए अनिवार्य है कि अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य-भाषा की प्रकृति और परिवेश, सास्कृतिक-ऐतिहासिक पीठिका का प्रामाणिक एव गहरा ज्ञान हो।

अनुवादक से पाठक यह भी चाहता है कि अनूदित पाठ-सामग्री में अभिव्यक्ति की वैसी ही सुबोधगम्यता, प्राञ्जलता और प्रवाहमयता हो, जो मूल पाठ मे मौजूद है। इसके साथ-साथ अनुवाद मे शाब्दिक वास्तविकता और परिशुद्धता भी हो, जिसके न होने पर सम्पूर्ण पाठ ही अप्रामाणिक हो जाता है। अनुवाद मे मूल सृजनात्मकता के समान सहजता और स्वाभाविक गत्यात्मकता हो जिससे मूल तथा अनुवाद की तुलना करने पर यह पता लगाना असम्भव-सा हो कि कौन-सा मूल है और कौन-सा अनुवाद। प्रत्येक अनुवादक को—चाहे वह साहित्यिक अनुवाद करता हो, या तकनीकी या वैज्ञानिक अनुवाद—इस तथ्य को स्वीकार करने मे ननु नच नही करनी चाहिए।

अनुवाद के प्रश्न पर तीन कोणो मे विचार किया जा सकता है—(1) अनूदित पाठ-सामग्री का पर्याप्त ज्ञान, (2) जिस भाषा मे अनुवाद करना है, उसपर पर्याप्त अधिकार का प्रश्न (3 इन दोनों के बीच की प्रक्रिया अनुवाद की पर किए गए सभी इस बात को मानकर चलते है कि अनुवादक को

की ज्ञानात्मक चेतना, भाषा और सवेदना, सरचनात्मक गठन, पद-बन्ध, अन्तर्गठन, पदाशो की आवृत्ति, वाक्य-गठन आदि की सम्पूर्ण जानकारी हो। किन्तु सम्पूर्णता में यह ज्ञान इतनी आसान बात नही है जितनी लगती है।

यह एक स्वयसिद्ध तथ्य है कि अनुवाद एक व्याख्यात्मक कला (Interpretative Art) है। किन्तु अनुवादक के साथ यह अजीब विरोधाभास है कि वह एक ऐसे माध्यम से कार्यरत व्याख्यात्मक कलाकार है जो उस मूल से, जिसे वह अपने शब्दों में प्रस्तुत करना चाहता है—समान भी है और भिन्न भी। अनुवादक अन्य कलाकारों की भाति मौलिक नही हो सकता, क्योंकि वह उन बिम्बो और शब्दो के माध्यम से कार्य करता है जो कलम की गई शाखा या प्रतिरोपित वृक्ष की भाति अपने जीवन के लिए ऐसे बीज के ऋणी होते है जिसे किन्ही अन्य हाथो ने किसी अन्य स्थान पर रोपा है। प्रत्येक व्याख्यात्मक कलाकार की भांति अनुवादक का कार्य पराये सौन्दर्य-बोध को अपनी ज्ञानात्मक सवेदना मे तादात्म्यीकृत करते हुए लक्ष्य भाषा मे अन्तरित करने का है।

कलाकार की भाति अनुवादक भी आत्माभिव्यक्ति का इच्छुक होता है। वह भी पूरी साधना से पराए ढाचे मे अपना अनुभव 'फिट' कर देना चाहता है। यह अनुभव ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, आत्मवृत्तान्तपरक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक या सांस्कृतिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। अत अनुवादक किसी भी प्रकार सर्जक से कम नही होता है और इसी अर्थ मे अनुवाद को 'पुनर्सृजन' या 'पुनर्प्रस्तुतीकरण' कहा भी जाता है।

कुछ विद्वान यह भी कहते रहे है कि अनुवादक के पास अपना मौलिक कहने को कुछ नही होता। उसका कार्य ऐसा होता है कि जैसे पुरानी बोतल मे रखी शराब को नयी बोतल मे ढग से पलट दिया जाए। अर्थात् अनुवाद प्रक्रिया मे अनुवादक को कुछ नही करना होता क्योकि पाठ-सामग्री परिवर्तन सम्भव नही है। किंतु इस कथन में सच्चाई नही है क्योकि एक बोतल से दूसरी बोतल मे पलटते समय शराब फैल भी सकती है, उसका काफी अश नष्ट भी हो सकता है। प्रश्न यह भी होता है कि पुरानी बोतल की चीज को सुरक्षित रखते हुए नई बोतल मे कैसे समाहित किया जाए। कभी-कभार तो पुरानी बोतल की शराब से ही नई बोतल के टूट जाने का खतरा रहता है जैसे कि अठारहवी शताब्दी मे अंग्रेजी के कवि आलोचकों ने जब प्राचीन क्लासिकों की रचनाओ का अपनी भाषा मे अनुकरण किया। तो वे 'रूप' (Form) को ही पकड पाए, वस्तु (Content) की भव्यता एव गहनता उनके हाथ से खिसक गई।

तमाम बहसो मे से एक बात उभरती है कि चाहे कोई कुछ भी कहे अनुवादक एक साहित्यिक कलाकार है जो अपने अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त रूप अपने से बाहर खोजता है ऐसी स्थिति मे यह दृष्टिकोण मूलत गलत है कि

अनुवादक एक उथला .... या खोखला रूपवादी (Empty Formalist होता है या वह सर्जक या कवि नही है बल्कि मात्र उल्थाकार शब्द-शिल्पी है जिसके पास अपना कहने को कुछ नही होता। निश्चय ही उस श्रेणी के कुछ अनुवादक होते है, किन्तु वे उस क्षेत्र के आदर्श उदाहरण नही है। कुछ तथाकथित लेखक भी इसी श्रेणी के होते है लेकिन वे रचनाकार के मॉडल के रूप मे स्वीकार नही होते। अनुवाद को हम चाहे तो साहित्यिक अनुकरण के रूप मे परिभाषित कर सकते है। अन्य भाषा की कविता अनुवादक के लिए एक 'मॉडल' बन जाती है और वह मात्र अनुकरण से प्रेरित नही होता बल्कि वैकल्पिक सादृश्य मे प्रेरित होता है। वस्तु का आकर्षण उसे इतना आकृष्ट करता है कि वह अपनी वस्तु (Content) के अनुकूल रूप (Form) खोजकर तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस प्रकार वह एक ऐसे रूप के माध्यम से नियन्त्रित करता है जो सहज तो नही होता, किन्तु उसके अनुकूल होता है।

इस तरह अनुवाद मनोवैज्ञानिक रूप से एक आभ्यन्तरीकरण की प्रक्रिया है—पलायन की नही। कोई चाहे तो अनुवाद की इस प्रक्रिया और अनुभव को निर्वैयक्तीकरण के साथ तादात्म्यीकरण की प्रक्रिया कह सकता है जिसे केवल भावनात्मक वस्तु के अन्तरण के रूप मे ही नही समझा जाना चाहिए। अन्य भाषा की कविता केवल विषय मात्र ही नही होती है—बल्कि एक आर्कटाइप या आद्य रूप होती है जो भौतिकेतर या अमूर्त्त प्रभाव जागृत करती है।

अनुवाद के सिद्धान्त भाषाओं के बीच एक विशेष प्रकार के सम्बन्ध से सबद्ध होते है। परिणामस्वरूप अनुवाद को तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की एक शाखा भी कहा जाता है। अनुवाद-सिद्धान्त की दृष्टि से वर्णनात्मक और ऐतिहासिक सादृश्य के बीच भेद करना असंगत होगा। किन्ही भी दो भाषाओ-बोलियो के बीच अनुवाद समानार्थकता (Translation Equivalence) खोजी जा सकती है और अनुवाद किया जा सकता है, भले ही वे स्थानिक, कालपरक, सामाजिक या अन्य किसी प्रकार से सम्बन्धित हो अथवा नही।

भाषाओं के बीच का सम्बन्ध सामान्य रूप से द्वि-दिशात्मक हो सकता है एव यह आवश्यक नहीं है कि यह सम्बन्ध सदैव सन्तुलित ही हो। अनुवाद प्रक्रिया के रूप में तो एक-दिशात्मक होता है और उसकी प्रक्रिया सदैव एक निर्दिष्ट दिशा मे होती है क्योकि अनुवाद सदैव स्रोत-भाषा, जिसे कभी-कभी मूल भाषा भी कहा जाता है, से लक्ष्य-भाषा में किया जाता है। तीन प्रसिद्ध विद्वान अनुवाद की परिभाषा इस प्रकार करते हैं।

डॉर्टेस्ट अनुवाद को अनुप्रयुक्त-भाषा विज्ञान की शाखा के रूप मे परिभाषित करते है जो प्रतिमानित प्रतीको के एक समूह से दूसरे समूह में अर्थ को अन्तरित करती है। "Translation is "that branch of applied science of

language which is especially concerned with the problem—or the fact—of the transference of meaning from one set of patterned symbols into another set of patterned symbols."

जे० सी० केटफोर्ड ने अनुवाद की परिभाषा इस प्रकार से की है—"अनुवाद स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा के समानार्थी पाठ में प्रतिस्थापित करने की प्रक्रिया है।" (The replacement of textual material in one language (S L) by equivalent textual material in another language। (T L)"

रेनाटो पोगिआलो ने कहा है कि 'अनुवाद एक व्याख्यात्मक कला है।' (Translation is an interpretative art.')

इन तीन परिभाषाओं के प्रकाश में चौथी परिभाषा हम इस प्रकार से कर सकते हैं कि—

'स्रोत-भाषा में व्यक्त प्रतीक-व्यवस्था को लक्ष्य-भाषा की सहज प्रतीक-व्यवस्था में रूपांतरित करने का कार्य अनुवाद है।'

इस परिभाषा में कुछ तथ्यों पर ध्यान देने की अपेक्षा है।

(1) स्रोत-भाषा में व्यक्त प्रतीकों और विचारों पर ध्यान की केन्द्रीयता।

(2) एक भाषा की प्रतीक-व्यवस्था को दूसरी भाषा की प्रतीक-व्यवस्था में सावधानी से भाषान्तर करने का प्रयास।

(3) अनुवाद की प्रतीक-व्यवस्था में स्रोत-भाषा की सहजता-स्वाभाविकता को लक्ष्य-भाषा में लाने का प्रयत्न।

(4) रूपान्तरण-कार्य की शक्तिवत्ता और गुणवत्ता।

(5) भाषागत प्रतीक-व्यवस्था (ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था) की अर्थ-सन्दर्भों, प्रसंगों तथा अर्थ-अनुषंगों में सही आवृत्ति।

अनुवाद-कर्म में मूल पाठ-सामग्री पर ध्यान को केन्द्रित करना अत्यन्त आवश्यक है। स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को सम्पूर्णता में थाहे बिना लक्ष्य-भाषा के समकक्षों द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। सच बात तो यह है कि अनुवाद सही प्रतीकों का लक्ष्य-भाषा में प्रतिस्थापन कार्य ही है। भाषा के अनेक स्तरों पर पाठ सामग्री को असमानार्थी लक्ष्य-भाषा सामग्री द्वारा प्रतिस्थापन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनेक बार ऐसा भी हो सकता है कि कुछ भी प्रतिस्थापित नहीं किया जाए, बल्कि स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा में सीधे अन्तरित कर दिया जाए।

स्पष्ट रूप में 'समानार्थी शब्द' एक संकेत शब्द (Key Term) है। अनुवाद-प्रक्रिया की मूलभूत समस्या स्रोत-भाषा में अनुवाद-समानार्थी खोजने की है।

अनुवाद-सिद्धान्त का केन्द्रीय कार्य अनुवाद-समानार्थकता के स्वरूप और स्थिति को परिभाषित करना है।

अनुवाद-कर्म मे हमे ध्यान देकर दो चीजों के बीच का पार्थक्य समझना होगा। यह पार्थक्य स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के समानार्थक शब्दो को ध्यान मे रखकर समझा जा सकता है। क्योंकि एक ओर तो हम अनुवाद-प्रक्रिया की समानार्थकता को अनुभवजन्य तथ्य के एक परिवेश से से दूसरे मे ग्रहण करते है और दूसरी ओर अनुवाद-प्रक्रिया मे अन्तर्निहित स्थितियों या औचित्य को थाहते रहते है। इस दृष्टि से अनुवाद-पक्रिया में अनुवादक का पूरा ध्यान अनुवाद के समानार्थक शब्दो पर होना चाहिए। ऐसा न होने से अनुवादक अपने लक्ष्य से च्युत हो जाता है।

हमें सामान्य सादृश्य तथा पाठ-समानार्थकता के मध्य निहित रहने वाले पार्थक्य पर भी ध्यान देना होगा। प्राय इन पर ध्यान न देने से दोनों का पार्थक्य स्पष्ट नही हो पाता है। किसी लक्ष्य-भाषा की पाठ-समानार्थकता मे वह पाठ भी विशिष्ट ध्यान की अपेक्षा करता है जिसे विशिष्ट स्थितियो में प्रस्तुत किया गया है, क्योकि उसे स्रोत-भाषा के समानार्थक शब्दो के पाठ या पाठाश के मूलार्थ को सही स्थितियो मे ग्रहण करना होगा। लक्ष्य-भाषा का सामान्य सादृश्य (जिसमे भाषिक सरचना करना, वाक्य-रचना, पद-बन्ध, अर्थ प्रक्रिया आदि सरचनात्मक तत्त्व होते है) अधिकाधिक निकटता से ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट सरचनात्मक प्रकृति होती है। इसलिए अनुवाद के दौरान भाषा की प्रकृति को कायम रखने का प्रयास करना होता है। ऐसी स्थिति मे यह स्पष्ट है कि सामान्य सादृश्य सदैव सन्निकटता का कार्य करे।

पाठ-समानार्थकता तथा बाहरी सादृश्य (Formal Correspondence) मे भी अन्तर किया जाना चाहिए। पाठ-समानार्थक स्रोत-भाषा के पाठ या पाठ के किसी भी अंश के समकक्ष के रूप मे प्रस्तुत किया गया लक्ष्य-भाषा या लक्ष्य-भाषा के पाठ का कोई भी अश होता है। दूसरी ओर बाहरी सादृश्य लक्ष्य-भाषा का कोई भी प्रवर्ग (इकाई, वर्ग, सरचना या संरचना का घटक आदि) होता है, जो लक्ष्य-भाषा की व्यवस्था मे यथासम्भव वही स्थान प्राप्त करता है, जो दिए गए स्रोत-भाषा प्रवर्ग को स्रोत-भाषा मे प्राप्त है। प्रत्येक भाषा अन्ततोगत्वा अद्वितीय है, उसके प्रवर्गो को भाषा के भीतर उनके सम्बन्धो के सन्दर्भ मे ही परिभाषित किया जाता है। अत बाहरी सादृश्य सदैव स्थूल अनुमानाश्रित होता है।

इस प्रकार पाठगत अनुवाद समानार्थक लक्ष्य-भाषा का कोई भी वह रूप होता है जो स्रोत-भाषा के रूप के समकक्ष के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

पाठ-समानार्थक को खोजना अनुवाद की दो भाषाओ की गहरी जानकारी और भाषा की अधिकार पर निर्भर रहता है

पाठगत अनुवाद समानार्थक लक्ष्य-भाषा पाठ का वह अंश होता है जिसे तभी परिवर्तित किया जा सकता है, जब स्रोत-भाषा पाठ के समकक्ष अंश को परिवर्तित किया जाए । जैसे—'मेरा बेटा आठ साल का है ।' इसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ—'My son is eight years old'। यहा पर 'मेरा बेटा' का पाठ समानार्थक हुआ—'My son'। लेकिन जब मूल पाठ या स्रोत-भाषा के पाठ मे अन्तर करेंगे 'तुम्हारी बेटी आठ साल की है,' तभी लक्ष्य-भाषा का पाठ समानार्थक बदल जाएगा—'Your daughter is eight years old।' यहा यह बदलाव तभी आया है जब हमने स्रोत-भाषा के पाठ मे परिवर्तन किया है ।

लम्बे पाठ के अनुवाद के दौरान प्राय प्रयुक्त होने वाले स्रोत-भाषा के शब्दो के लक्ष्य-भाषा मे समानार्थक अक्सर एक से अधिक हुआ करते हैं। सन्दर्भ एव प्रसग के अनुसार भी उनमे अर्थ-भेद हो जाना स्वाभाविक है । कारण, किसी भी शब्द का कोई भी शब्द अन्तिम समानार्थी शब्द नही माना जा सकता । अनुवाद-समानार्थकता की सम्भावनाओ के आधार पर शब्दो को खोजने का प्रयास करते ह, जिसमे सीमाओ को बचाया जा सकता है ।

अनुवाद उसी स्थिति मे अनुवाद कहा जा सकता है, जब स्रोत-भाषा का सम्पूर्ण सन्दर्भ और प्रसंग लक्ष्य-भाषा मे व्याख्यात्मक आकृति पाने पर भी स्रोत-भाषा से दूर न जा पड़े क्योकि अपने समग्र रूप में अनुवाद एक भाषा के भाव एव विचारगत प्रतीको का अन्य भाषा के भाव एव विचारपरक प्रतीको मे प्रतिस्थापन है ।

अनुवाद : प्रक्रिया और प्रकार या प्रभेद

सामान्य रूप से यह माना जाता है कि अनुवाद में भी मौलिक सृजनात्मकता की भांति प्रातिभ कलात्मकता और शिल्पगत दक्षता के साथ-साथ व्यापक भाषिक सरचनात्मक अन्विति का प्रयास अपेक्षित होता है। विद्वान मौनिन (Mounin) का यह कथन आज के सन्दर्भ मे काफी सटीक माना जा सकता है, 'जागरूक अनुवादक के लिए भाषिक दक्षता ही पर्याप्त नही है, बल्कि उसे एक कुशल नृतत्त्व-शास्त्री भी होना चाहिए।' तात्पर्य यह है कि उसमे भाषिक अनुवाद मात्र से सन्तुष्ट न होकर स्रोत-भाषा की तहो मे जाने की दक्षता होनी चाहिए। उसे भाषा की गहनतम पकड के साथ मानव-स्वभाव के मनोविज्ञान की अन्तर्ज्ञानात्मक पकड़ होनी चाहिए।

अनुवाद चाहे वैज्ञानिक हो अथवा साहित्यिक, उसमे सृजनात्मकता की प्रक्रिया हर स्थिति में अन्तर्निहित रहती है। वस्तुत अनुवाद विषय की जटिलता, दुर्बोधता तथा स्रोत और लक्ष्य-भाषा मे अर्थ-तत्त्व-सम्बन्धी सहसम्बन्धो से अनपेक्ष स्रोत-भाषा मे प्रस्तुत सामग्री की सम्पूर्ण विवरणो और उसमे निहित स्पष्ट-अस्पष्ट सकेतार्थो का लक्ष्य-भाषा मे लिपिबद्ध—पुनर्प्रस्तुतीकरण है। ऐसा करने के लिए सर्वप्रथम विषय (Subject) को भलीभाति समझा जाना चाहिए। किसी भी अभिलिखित पाठ में तीन बातो पर ध्यान दिया जाता है .

(1) लेखक ने क्या कहा ?

(2) लेखक ने जो कहा है, उसके बारे में वह क्या सोचता है ?

(3) उसने जो कहा है, उसके बारे मे पाठक क्या सोचता है ?

यह तीनो बाते तकनीकी अनुवाद के सन्दर्भ मे भी विशेष रूप से ध्यान मे रखनी चाहिए। क्योकि अनुवादक अनुवाद के माध्यम से पाठको के समक्ष एक नवीन एव जटिल जानकारी को सम्प्रेषणीय बनाता है। वास्तविक जानकारी को प्रभावपूर्ण ढग से समझने के लिए लेखक के 'आधार वाक्य', उसके आगमनात्मक Inductive और Deductive तर्को और उसके निष्कर्षों को

समग्र रूप में समझने का प्रयास करते हुए अनुवादक को लेखकीय सन्दर्भ मे भाषान्तरित करना चाहिए।

व्यावहारिक प्रयोजन से उसे उस आयाम मे प्रवेश करना चाहिए जहा से लेखक ने अपने कच्चे माल के लिए सूचना प्राप्त की है। केवल तभी वह इस जानकारी को लक्ष्य-भाषा के भाषिक और पारिभाषिक समकक्षो मे सुसगत रूप मे पुनर्प्रस्तुत कर सकेगा। एक दृष्टि से सम्पूर्ण अनुवाद-प्रक्रिया का यही आधारभूत सिद्धान्त है। व्यक्तिगत क्षमता, विषयगत अभिज्ञान, कार्य करने का वैयक्तिक स्वभाव, विषय के स्वरूप तथा स्रोत और लक्ष्य-भाषा मे प्रवाह-क्षमता आदि तत्त्व इसके बाद ही आते है।

अनुवाद-सम्बन्धी कोई मानक प्रक्रिया-निर्धारण करना उतना ही कठिन काम है जितना कि संगीतकला, चित्रकला या काव्यकला पर कोई नियम-पुस्तिका लिखना। साथ ही यह कहना कि इन नियमो का पालन नौसिखियो तथा आचार्यो द्वारा समान रूप से किया जायेगा। फिर भी प्राकृतिक अभिमत की दृष्टि से अनुवाद-प्रक्रिया सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त निर्मित किए जा सकते है—

(1) अनुवाद करते समय एक-एक पैराग्राफ पढ़कर अनुवाद करते जाने के बजाय सम्पूर्ण स्रोत-भाषा से समग्रता में परिचय बेहतर होगा। ऐसा करने से अनुवाद मे मानसिक क्रमबद्धता, एकरूपता तथा सुबोधगम्यता आयेगी।

(3) किसी भी नयी जटिल, अपरिचित पाठ-सामग्री पर अनुवाद कार्य आरम्भ करने से पहले स्रोत-भाषा मे उसके नवीनतम ग्रन्थ-सूचीपरक सन्दर्भो को खोज लिया जाना चाहिए जिससे कि ऐसे सन्दर्भो से पारिभाषिक समस्याओ का समाधान किया जा सके। यदि लक्ष्य-भाषा मे प्रत्यक्ष सन्दर्भ उपलब्ध नही हो पाते तो विश्वकोशो तथा विषय से सम्बन्धित कोशो से सहायता लेनी चाहिए। यह सब करने पर भी यदि कोई समस्या रह जाती है तो उस विषय के विशेषज्ञो से परामर्श लेना उचित होगा।

(3) नये शब्दो, तकनीकी मुहावरो, वैज्ञानिक क्षेत्र की शब्दावली, व्यावसायिक नामों, उत्पादो, संघटनात्मक, संकल्पनापरक, पारिवर्णी शब्दो (Acronym) ने दोनों भाषाओ मे समकक्षो को अन्योन्य सन्दर्भो के साथ सूचीबद्ध रूप मे रखना चाहिए। इन सूचियो को समय-समय पर अद्यतन बनाया जाना चाहिए। ऐसा करने से विभिन्न विषयो की नवीनतम शब्दावली अनुवादक के पास हर समय मौजूद रहेगी।

(4) समसामयिक पुस्तकों, निबन्धो, पत्र-पत्रिकाओ के अनुवाद के सम्बन्ध मे यदि स्वयं लेखक से सम्पर्क स्थापित किया जाए तो अनुवाद प्रामाणिक तथा बेहतर होने की सम्भावना बढ़ जाती है। क्योंकि तकनीकी वैज्ञानिक एव साहित्यिक विषयो के अनुवाद या प्रकाशन के बारे म लेखक को पता चलता है, तो वह रूप

मे—हर सम्भव जानकारी के माध्यम से—उसे अद्यतन बनाने की कोशिश करता है।

(5) अनुवादक का प्रयास होना चाहिए कि वह स्रोत-भाषा की सामग्री से तादात्म्यीकरण स्थापित करने का हर सम्भव प्रयास करे। तदुपरान्त उसे लक्ष्य-भाषा मे निर्वैयक्तिकता के साथ पुनर्सृजित करने मे भरसक शक्ति लगा देनी चाहिए। लक्ष्य-भाषा सदैव उसकी अपनी ही भाषा नही होती। अनेक बार वह अपनी भाषा से विदेशी भाषा मे अनुवाद करता है और ऐसा करते समय उसे विचार के एकदम भिन्न क्षेत्र मे प्रवेश करना पडता है। यह विचार-क्षेत्र उसके अपने जीवन-ढंग, रहन-सहन, आचार-विचार-व्यवहार आदि सभी से अपरिचित एव विलक्षण होता है। ऐसा करते समय उसे कभी-कभार बहुत सूक्ष्म विचारो और धारणाओ को अत्यधिक सावधानी से अन्तरित करना होता है। इसीलिए तादात्म्यीकरण की प्रक्रिया की अनुवाद मे बडी भूमिका होती है।

(6) जिस भाषा की सामग्री का अनुवाद करना है तथा जिस भाषा मे अनुवाद करना है, उसकी परिस्थितिजन्य स्थितियो का संज्ञान अनुवादक को प्राप्त करना चाहिए क्योकि भाषा का स्वरूप परिवेशबद्ध होता है।

(7) भाषागत सास्कृति सन्दर्भो की जानकारी प्रत्येक अनुवादक को अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। साहित्यिक और मानविकी से सम्बन्धित विषयो के अनुवाद मे तो यह एकदम अनिवार्य है क्योकि सास्कृतिक सघर्ष और द्विविधाए भाषा पर विशेष छाप डालती है। यह एक ऐसी दुर्निवार स्थिति है जिसे बचाया नही जा सकता।

अनुवाद के प्रकार

स्थूल रूप से अनुवाद के बहुत से प्रकार या भेद किए जा सकते है। किन्तु इसके प्रमुख तीन आधार है—(1) सीमा, (2) स्तर, (3) श्रेणी या पदक्रम।

1 सीमा के आधार पर अनुवाद के दो भेद किए जा सकते है .

(क) पूर्ण अनुवाद (Full translation)

(ख) आशिक अनुवाद (Partial translation)

(क) पूर्ण अनुवाद—पूर्ण अनुवाद मे सम्पूर्ण अनूद्य-सामग्री का अनुवाद किया जाता है। स्रोत-भाषा के पाठ का प्रत्येक भाग लक्ष्य-भाषा मे लाया जाता है।

(ख) आंशिक अनुवाद—आंशिक अनुवाद मे स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री के कुछ अशो का अनुवाद न करके उन्हे लक्ष्य-भाषा के पाठ मे सीधे अन्तरित कर दिया जाता है। साहित्यिक अनवाद में ऐसा प्राय किया जाता है। कभी-कभी जब स्रोत भाषा के किसी पद को अननुवाद्य समझा जाता है तब या फिर स्थानीय

पृष्ठभूमि या स्थानिक विशेषता लाने के प्रयोजन से उन्हे लक्ष्य-भाषा मे ज्यो का त्यो ले लिया जाता है ।

2. भाषिक स्तर के आधार पर अनुवाद के प्रकार

भाषिक स्तर के आधार पर अनुवाद के दो भेद किए जा सकते हैं—

(क) समग्रता मे अनुवाद (Total translation)

(ख) निर्बद्ध अनुवाद (Restricted translation)

(क) **समग्रता अनुवाद**—इस प्रकार के अनुवाद में स्रोत-भाषा पाठ को सभी स्तरो पर प्रतिस्थापित किया जाता है। स्रोत-भाषा के व्याकरण और शब्दावली को भी लक्ष्य-भाषा के व्याकरण और शब्दावली के समकक्षों द्वारा सम्पूर्णता मे प्रतिस्थापित कर दिया जाता है ।

(ख) **निर्बद्ध अनुवाद**—इस प्रकार के अनुवाद मे स्रोत-भाषा के पाठ को लक्ष्य-भाषा के पाठ के समानार्थक पाठ द्वारा केवल एक स्तर पर प्रतिस्थापित किया जाता है। इसमे अनुवाद स्वर-विज्ञान या लिपि-वैज्ञानिक या व्याकरण या शब्द-विज्ञान के आधार पर किया जाता है। लिपि-वैज्ञानिक अनुवाद को लिप्यन्तरण नही समझा जाना चाहिए । क्योकि लिप्यन्तरण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमे स्वर-विज्ञानपरक अनुवाद तथा स्रोत और लक्ष्य-भाषा मे स्वर-विज्ञान और लिपि-विज्ञान का परस्पर सम्बन्ध शामिल होता है । लिप्यन्तरण मे स्रोत-भाषा की लिपि-विज्ञान-परक इकाइयो को तदनुरूप स्वर-विज्ञानपरक इकाइयो द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है और फिर इन स्रोत-भाषा की स्वर-विज्ञानपरक इकाइयो को उनके समकक्ष लक्ष्य-भाषा की स्वर-विज्ञानपरक इकाइयो मे अन्तरित कर दिया जाता है और अन्त मे यह लक्ष्य-भाषा की स्वर-विज्ञानपरक इकाइया तदनुरूप लिपि-विज्ञानपरक इकाइयों मे प्रतिस्थापित की जाती है ।

3 श्रेणी या पद-क्रम के आधार पर अनुवाद के प्रकार

इस प्रकार का अनुवाद व्याकरणिक या स्वर-वैज्ञानिक पदक्रम के क्रम के आधार पर स्थापित किए गए अनुवाद समानार्थको से सम्बन्धित है, प्राय: इसे क्रमबद्ध अनुवाद भी कहा जाता है । मुक्त अनुवाद (Free translation), शब्दानुवाद (Literal translation), शब्दश: अनुवाद (Word for word translation) भी आंशिक रूप से इसी से सम्बन्धित है ।

(क) **मुक्तानुवाद**—यह अनुवाद सदैव अबद्ध होता है। प्राय यह अनुवाद शब्द के स्तर पर क्रमबद्धता की वदिश नही मानता ।

(ख) **शब्दानुवाद**—मुक्तानुवाद और शब्दश. अनुवाद के बीच की श्रेणी को कहते हैं यह शब्दश । से प्रारम्भ होता है किन्तु लक्ष्य भाषा

के व्याकरण के अनुरूप इसमे परिवर्तन कर लिये जाते है अर्थात् अतिरिक्त शब्द जोड दिए जाते है और सरचना किसी भी क्रम से बदल सकती है।

(ग) **शब्दश अनुवाद**—यह शब्दानुवाद से आशिक रूप से सबद्ध होता है। यह स्रोत-भाषा पाठ मे लक्ष्य-भाषा के अनुरूप किसी परिवर्तन को स्वीकार नही करता। वस्तुत. यह शब्द के स्तर पर क्रमबद्ध अनुवाद होता है।

उपर्युक्त भाषा-वैज्ञानिक आधार के अतिरिक्त अन्य आधारो पर भी अनुवाद के भेद या प्रकार कर सकते है। इनमे से प्रमुख आधार इस प्रकार है

(1) वाङ्मय, (2) गद्य-पद्य, (3) विधा, (4) विषय, (5) अनुवाद-प्रकृति।

1 वाङ्मय के आधार पर दो भेद है

(क) ज्ञान के साहित्य का अनुवाद

(ख) शक्ति के साहित्य का अनुवाद।

(क) ज्ञान के साहित्य (Literature of knowledge) के अन्तर्गत भौतिकी, वनस्पति विज्ञान, जीव-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, विधि, सामाजिक विज्ञान आदि जैसी ज्ञान की विभिन्न धाराओ को अनूदित करने का कार्य किया जाता है। वैज्ञानिक अनुवाद के अन्तर्गत इसी प्रकार का कार्य विश्व भर मे तेजी से हो रहा है।

(ख) शक्ति के साहित्य (Literature of power) के अन्तर्गत तमाम भावाश्रित साहित्य आता है। मानव का समस्त लालित्य-बोधीय कार्य, जिसमे ललित कलाओ की स्थिति प्रमुख है—इसी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। कविता-कहानी-नाटक का अनुवाद इसी ललित साहित्य के अनुवाद का एक प्रमुख अग है।

2. गद्य-पद्य के आधार पर

(क) **पद्यानुवाद**—प्राय. इसमे मूल पद्य का अनुवाद पद्य में ही किया जाता है। जैसे कालिदास के 'मेघदूत' के अनेक अनुवाद होते रहे है। शेक्सपियर के 'हेमलेट' या 'मैकवेथ' के तमाम काव्यानुवाद इसी श्रेणी में आते है। कभी-कभार तो पद्य का पद्य मे अनुवाद करते समय छन्द को ही आधार बना लिया जाता है। यद्यपि यह अनिवार्य नही है तथापि छन्द का थोडा-सा ध्यान रखना भी पडता है। पद्य से पद्य के अनुवाद को ही पद्यानुवाद कहते है। शब्द-लय तथा अर्थ-लय के अनुकरण पर इस प्रकार का अनुवाद आधारित होता है।

(ख) **गद्यानुवाद**—प्राय पद्य का अनुवाद पद्य मे और गद्य का अनुवाद गद्य मे ही किया जाता है। प्रेमचन्द के प्रख्यात उपन्यास 'गोदान' के अंग्रेजी आदि कई भाषाओ मे गद्यानुवाद हुए है। किन्तु गद्य से गद्य मे पद्य का पद्य मे ही अनुवाद करने का कोई रूढ नियम नही है परन्तु स्थिति और अवसर को देखते हुए पद्य का अनुवाद गद्य मे किया जा सकता है, किया जाना चाहिए जैसे कवि नागार्जुन द्वारा

कालिदास के 'मेघदूत' का गद्यानुवाद। अनुवादक चाहे तो गद्य का पद्य मे भी अनुवाद कर सकता है। ऐसे उदाहरण विरले ही मिलते है कि गद्य का पद्य मे अनुवाद हुआ है।

(ग) छन्दबद्ध अनुवाद—जैसा कि इसके नाम मे ही स्पष्ट है, यह अनुवाद मूल पाठ के छन्द मे ही किया जाता है। जैसे अंग्रेजी के Sonnet का अनुवाद करते समय उसके 11 वर्णो और 14 पक्तियो मे उसकी स्वत पूर्ण विषय-विचार शृखला को ढोने का प्रयास किया जाए। अंग्रेजी के अधिकाश 'सॉनेट' Petrach की भाति दो चतुष्पदियो और दो त्रिपदियां या स्पेंसर और शेक्सपियर की भाति तीन चतुष्पदियो और एक युग्मक मे रचित है। अनुवादक को उनकी इस छन्द-कला का ध्यान रखना होगा। अगर इसी आधार पर अनुवाद किया जाता है, तो इस प्रकार के अनुवाद को छन्दबद्ध अनुवाद कहते हैं।

(घ) छन्दमुक्त अनुवाद—इसमें अनुवादक स्रोत-भाषा के पाठ के छन्द-बन्धन मे न बधकर लक्ष्य-भाषा मे प्रचलित किसी भी छन्द को अपना लेता है। जैसे कालिदास का 'मेघदूत' सस्कृत के मन्दाक्रान्ता छन्द मे है। किन्तु डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने इसका अनुवाद मुक्त छन्द में किया है। कवि पोप के प्रसिद्ध काव्य 'Essay on Criticism' का अनुवाद कविवर प० जगन्नाथदास रत्नाकर ने हिन्दी के रोला छन्द में 'समालोचनादर्श' नाम से किया है।

3. विधा के आधार पर

(क) काव्यानुवाद—इस प्रकार का अनुवाद गद्य या पद्य मे से किसी का भी हो सकता है। यो तो प्राय काव्य का अनुवाद काव्य मे ही किया जाता है। हिन्दी मे संस्कृत काव्यो को काव्य मे अनूदित करने की एक समृद्ध परम्परा रही है। भारतेन्दु-युग मे लाला सीताराम ने कालिदास के 'रघुवंश' का अनुवाद दोहा-चौपाइयो मे किया। श्रीधर पाठक ने कालिदास के 'ऋतुसहार' का अनुवाद ब्रज-भाषा के सवैया छन्द मे किया। यह लगातार कहा जाता रहा है कि काव्यानुवाद हो ही नही सकता, किन्तु ऐसा लगता है कि अनुवादको ने इस कथन की कभी परवाह नही की। प्राचीन परम्परा से इस बात के पर्याप्त प्रमाण दिए जा सकते है कि काव्यानुवाद बडी लगन से किए जाते रहे हे। यह काव्यानुवाद निबद्ध तथा अनिबद्ध काव्य के दोनो रूपों का हुआ है। यूनानी कवि होमर के विकसनशील महाकाव्य 'इलियड' के विश्वभर मे तमाम काव्यानुवाद हुए है।

(ख) नाट्यानुवाद—विश्व-भर मे नाट्यानुवाद की एक समृद्ध परम्परा दृष्टिगत होती है। हिंदी मे आधुनिक काल के आरभ से ही नाटको का अनुवाद शुरू हो गया था। गोपीनाथ एम० ए० ने सन् 1950 मे शेक्सपियर के तीन नाटकों क हिन्दी मे किए उन्होने Romeo and Juliet As You

Like It' तथा 'Merchant of Venice' का अनुवाद किया। मथुरा प्रसाद चौधरी ने 'मैकबेथ' का साहसेन्द्र साहस' नाम से अनुवाद किया। कवि बच्चन तथा अमृतराय ने 'हेमलेट' तथा 'मैकबेथ' का अनुवाद किया। कवि रघुवीर सहाय ने 'मैकबेथ' का पुनः 'बरनम वन' नाम से अनुवाद किया है।

स्वय भारतेन्दु ने सस्कृत के 'मुद्राराक्षस' का तथा राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का हिन्दी मे अनुवाद किया। हबीब तनवीर ने 'मृच्छकटिकम्' का 'मिट्टी की गाडी' के रूप मे अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त नाट्य रूपान्तर (कहानी-उपन्यासादि के) इस दौर मे अत्यधिक लोकप्रिय हुए है जैसे विष्णु प्रभाकर द्वारा 'गोदान' का 'होरी' नाम से नाट्य-रूपान्तर। मुक्तिबोध की लम्बी कविताओ के नाट्य-रूपान्तर।

नाटक का सम्बन्ध रगमंच से होने के कारण इस तरह के अनुवादो मे अनेक प्रकार की व्यावहारिक कठिनाइया सामने आती है। यदि रगमच की बुनियादी मागो को पूरा करने मे कोई नाट्य-रूपान्तर असफल हो जाता है तो यह नाट्य-रूपान्तरकार की भारी असफलता है। इसलिए नाटक के अनुवादक तथा नाट्य-रूपान्तरकार का रंगमच से जुड़ा होना निहायत जरूरी है। रगमच के व्यावहारिक ज्ञान के बिना नाट्यानुवाद सफलता से किया ही नही जा सकता।

(ग) **कथानुवाद**—कथा-साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास-कहानी आदि को स्थान दिया जाता है। कहानियो तथा उपन्यासो का अनुवाद काव्यानुवाद की तुलना मे अपेक्षाकृत सरल होता है। साथ ही ये अनुवाद ज्यादा प्रचलित एव लोकप्रिय भी है। टालस्टाय के उपन्यास 'War and Peace' के अनेक भाषाओ मे हुए अनुवाद काफी लोकप्रिय हुए है। अज्ञेय ने जैनेन्द्र के प्रख्यात उपन्यास 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी मे 'The Resignation' नाम से सफल अनुवाद किया है। हिन्दी मे भारतीय भाषाओ के हजारो उपन्यास सफलता से अनूदित हुए है। जिनमे सर्वाधिक सख्या बगला मे हिन्दी अनुवादो की है। संस्कृत की कहानियो—'पचतन्त्र' या 'कथा-सरित्सागर' के विदेशी भाषाओ मे सैकड़ो अनुवाद हुए है। इस प्रकार कथानुवाद के क्षेत्र मे अनुवादक का योगदान उल्लेखनीय रहा है।

(घ) **अन्य साहित्यिक विधाओ के अनुवाद**—निबन्ध, आत्मकथा, रेखाचित्र, सस्मरण आदि के अनुवाद बहुत समय से प्रचलित हैं। स्वय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बेकन के निबन्धो का अनुवाद 'बेकन विचार-रत्नावली' के नाम से हिन्दी मे किया। गाधीजी की 'आत्मकथा' के अनेक भारतीय भाषाओ मे अच्छे अनुवाद किए गए है।

4 विषय के आधार पर

(क) ललित साहित्य का अनुवाद
(ख) धार्मिक-पौराणिक साहित्य का अनुवाद
(ग) वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद
(घ) गणित का अनुवाद
(च) प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद
(छ) अभिलेखो, गजेटियरो आदि का अनुवाद
(ज) पत्रकारिता से सम्बन्धित विषयो का अनुवाद
(झ) सामाजिक विज्ञान के विषयो का अनुवाद
(ट) काव्यशास्त्र तथा भाषा-वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्धित अनुवाद

5. अनुवाद-प्रकृति के आधार पर

अनुवाद-प्रकृति के आधार पर भी अनेक भेद-प्रभेद किए जा सकते है—

(क) शब्दानुवाद—शब्दानुवाद शब्द का प्रयोग यहा Verbal और Literal translation के मिले-जुले अर्थ मे किया जाता रहा है। प्राय शब्दानुवाद और शब्दश: अनुवाद को एक मानने की भूल हो जाती है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि शब्दानुवाद में स्रोत-भाषा के प्रत्येक शब्द पर अनुवादक को ध्यान रखना पडता है और शब्दश अनुवाद मे शब्द के स्तर पर क्रमबद्ध अनुवाद की ओर ध्यान दिया जाता है। शब्दानुवाद का तात्पर्य यह नही है कि स्रोत-भाषा की वाक्य-व्यजना के ढंग मे लक्ष्य-भाषा की वाक्य-व्यजना की जाए। 'will he go' का अनुवाद 'करेगा वह जाना' वस्तुत कोई अनुवाद नही हुआ क्योंकि अग्रेजी की वाक्य संरचना को हिन्दी वाक्य सरचना के साचे मे नही ढाला गया। बल्कि शब्दानुवाद से तात्पर्य यह लिया जाना चाहिए कि मूलपाठ मे कही गई प्रत्येक बात को लक्ष्य-भाषा मे ढग से अन्तरित किया जाए। गणित, विधि जैसे विषयो में ऐसा अनुवाद आवश्यक होता है, क्योकि वहा कुछ भी छूट जाने या कुछ भी जोड दिए जाने से, भयकर भूलें हो जाने की सम्भावना रहती है। शब्दानुवाद करते समय सर्वाधिक सावधानी इस बात की रखनी पडती है कि भाषा मे बोधगम्यता, सम्प्रेषणीयता और प्रवाह रहे। पत्र-पत्रिकाओ आदि मे अग्रेजी से हिन्दी अनुवाद करते समय कई बार इस प्रकार की गलतिया रह जाती है और भाषा हास्यास्पद भी लगने लगती है।

शब्दानुवाद घातक इस अर्थ मे होता है कि स्रोत-भाषा की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थध्वनियो और भाव की विशिष्ट भंगिमाओ को पकडने मे अनुवादक प्राय असमर्थ रह जाता है। इसलिए स्रोत-भाषा का मूलार्थ अपनी अनुगूज मे लक्ष्य-भाषा मे गडबडा जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यजना-प्रधान सामग्री का अनुवाद करता है तो से काम नहीं चलता करते समय
और के स्तरो को नहीं पकड पाता ऐसा अनुवाद अर्थ विहीन हो

जाता है। जैसे He prefers dying to living का अनुवाद 'वह जिन्दगी से मृत्यु को वरीयता देता है' बड़ा ही अटपटा और बेढंगा लगता है, क्योंकि कहना चाहिए था 'वह जीने के बजाय मरना बेहतर समझता है।'

(ख) भावानुवाद—भावानुवाद मे अनुवादक का ध्यान भाव, विचार और अर्थ पर अधिक रहता है और वह पूरी शक्ति से उसी को लक्ष्य-भाषा में अन्तरित करने का प्रयास करता है। भाषा के पदो और वाक्यों पर अधिक ध्यान न देने के कारण यह अर्थ-विज्ञान के अधिक निकट है। अनुवादक स्रोत-भाषा पाठ-सामग्री के सम्पूर्ण अर्थ को लाने का प्रयास करता है, इसलिए इसमे स्रोत-भाषा की आत्मा प्राय सुरक्षित रहती है। सूक्ष्म अर्थच्छायाओ वाली स्रोत-भाषा की सामग्री का लक्ष्य-भाषा मे अनुवाद इस अर्थ मे हितकारी सिद्ध होता है कि अनुवादक अर्थ की एक सूक्ष्म पकड को बिखराव मे नष्ट नही होने देते। भावानुवाद कई प्रकार का होता ह। कभी-कभार ऐसा भी होता है कि स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री के शब्दानुवाद से शब्दो के बेहद जटिल जजाल मे फस जाने की सभावना होती है तो ऐसी स्थिति मे भावानुवाद ही करना बेहतर होता है। भावानुवाद मे स्रोत-भाषा की बाह्य शारीरिक योजना के समाप्त हो जाने से अनुवाद मुक्त दिखाई देता है। साथ ही शाब्दिक यान्त्रिकता से मुक्त हो जाने के कारण अनुवादक अपनी सृजनात्मकता सहज शक्ति से काम लेता है। इस प्रकार भावानुवाद एक सीमा तक सृजनात्मकता के अधिक निकट है। मूल के शब्दश अनुवाद पर आधारित न होने के कारण यह अनुवादक की मौलिकता का क्षेत्र भी है और इस मौलिकता से मौलिक सृजन की तरह का रचनात्मक आनन्द पाठक को प्राप्त होता है। कई बार तो अनुवादक भावानुवाद मे इतना क्षमता सम्पन्न होता है कि पाठक यह भूल जाता है कि वह अनुवाद को पढ़ रहा है या मूल को। हिन्दी मे बाबू श्यामसुन्दरदास ने साहित्या-लोचना' मे हडसन की पुस्तक An Introduction to the Study of Literature का इतना सफल भावानुवाद किया है कि उसमे बाबूजी की मौलिकता दर्शनीय है। एक उदाहरण लीजिए—हडसन ने लिखा है—'Thus in our study of literature on the historical side we shall have to consider two things—The continuous or life national spirit in it, and the Varying phases that continuous life or, the way in which it embodies and expresses the changing spirit of successive ages First, what do we mean when we speak of the history of greek or French or English literature ? (page 31)

बाबूजी ने 'साहित्यालोचन' में उसका भावानुवाद इस प्रकार किया है—अतएव किसी साहित्य के मे ऐतिहासिक दृष्टि से हमे दो बातो पर विचार करना पड़ता है—एक तो उसके गत जीवन पर अर्थात उसके जातीय भाव

पर और दूसरे, उस जीवन के परिवर्तनशील रूप पर अर्थात् इस बात पर कि वह जातीय जीवन किस प्रकार भिन्न-भिन्न समयो के भावो को अपने मे अन्तर्हित करके उन्हे व्यंजित करता है। अतएव किसी जाति के काव्य-समूह या साहित्य के अध्ययन से हम यह जान सकते है कि इस जाति या देश का मानसिक जीवन कैसा था और वह क्रमश. किस प्रकार विकसित हुआ।" (साहित्यालोचन, पृ० 44) इस अनुवाद मे हडसन मे ज्यादा बाबूजी के व्यक्तित्व और शैली की छाप है।

विद्वान् लोग भावानुवाद का यह दोष मानते है कि उसमे मूल लेखक का व्यक्तित्व रह जाता है और अनुवादक अपनी भाव-सम्पदा, विचार-सम्पदा तथा शैली से पाठक को आक्रान्त कर लेती है। इस कथन पर गहराई से विचार करते ही यह बात निकलती है कि यह अत्यत असंगत तर्क है क्योंकि भावानुवाद में अनेक प्रकार की उलझनो से मुक्ति मिलती है और वह दूसरी भाषा के महत्त्वपूर्ण विचारो और अभिव्यंजनाओ को अपनी भाषा में लाता है। साहित्य के अनुवाद का यही इस दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी पद्धति है।

(ग) **छायानुवाद**—छायानुवाद मे अनुवादक मूल पाठ की छाया—अर्थच्छाया को अनुवाद मे डालना है। 'छाया' सस्कृत का बहुत पुराना शब्द है और इसका प्रयोग नाटको मे यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है। सस्कृत पाठ की छाया जब हिन्दी पाठ पर दृष्टिगत होती है तो उसे छायानुवाद कहा जाता है। जैसे अवन्ति वर्मा का यह श्लोक देखिए -

दु.सहतापभयादिव सम्प्रति मध्यस्थिते दिवसानके।
छायामिव वाछन्ती छायापि गता तरुलतानि॥

शार्ङ्ग 3835

इसका छायानुवाद बिहारी के दोहे मे इस प्रकार मिलता है :

'बैठि रही अति सघन वन पैठि सदन तन माह।
निरखि दुपहरी जेठ की छाहो चाहति छाह॥

विदेशी कृतियो की प्रविधि और छाया को लेकर जो रचनाए की जाती है उनमे भी एक प्रकार का छायानुवाद रहता है। जैसे अज्ञेयजी के उपन्यास 'नदी के द्वीप' पर डी० एच० लारेन्स के Lady Chatterly's Lover की धुधली छाया दृष्टिगत होती है। रागेय राघव के उपन्यास पर 'Uncle Tom's Cabin' की छाया, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' पर 'नाइस' की छाया या प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' पर थैकरे के 'Vanity Fair' की छाया। कभी-कभार लेखक विशेष की कुछ पक्तियो पर देशी-विदेशी लेखक की छाया दृष्टिगत होती है। पन्तजी की पक्ति है—'सिखा दो ना हे मधुपकुमारि, मुझे भी अपने मीठे गान' यह अग्रेजी कवि शैली की इस पक्ति का छायानुवाद प्रतीत होती है—(Teach me half of the gladness that they brains must Know)

(घ) **रूपान्तरण** (Adaptation)—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, अनुवादक इसमे कृति का रूप बदलता है। इसीलिए रूपान्तरकार स्रोत-भाषा के पाठ को अपनी आवश्यकतानुसार बदलते हुए लक्ष्य-भाषा मे प्रस्तुत करता है। मूल सामग्री की विधा का परिवर्तन प्राय. इसमे होता है। उपन्यास या कहानी को नाटक में बदल दिया जाता है। सुविधा के अनुसार पात्र और काल-योजना मे भी हेर-फेर हो सकता है। शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक Othello का हिन्दी मे उपन्यासपरक रूपान्तर शत्रुघ्नलाल शुक्ल ने किया है। यह रूपान्तर एक ही भाषा मे विधागत परिवर्तन के रूप में हो सकता है। शेक्सपियर के नाटको को चार्ल्स लैम्ब ने 'Tales from Shakespeare' में कहानियो के रूप मे रूपान्तरित किया है। उसी प्रकार विभिन्न कविताओं-उपन्यासो आदि के नाट्य रूपान्तर होते है जैसे विष्णु प्रभाकर द्वारा प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास का 'होरी' रूप मे नाट्य रूपान्तर या मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'अंधेरे मे' का नाट्य रूपान्तर है। रूपान्तर बहुत लोकप्रिय इसलिए भी हुए है कि उनमे शब्द-विधान को दृश्य-रूप मे, दृश्य को शब्द या पाठ्य-विधा-रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। आजकल टेलीविजन धारावाहिको मे उपन्यासो तथा कहानियो को दृश्य रूपातरित करके प्रस्तुत किया जाता है।

(ङ) **सारानुवाद** (Summary translation) -लम्बे भाषणो, राजनीतिक वार्ताओं आदि मे दुभाषिये इस प्रकार की अनुवाद-पद्धति का ही सहारा लेते हैं। क्योंकि उसमे स्रोत-भाषा की सामग्री का लक्ष्य-भाषा मे सारांश प्रस्तुत किया जाता है। इसमे आवश्यकता इस बात के चयन की होती है कि जो बाते स्रोत-भाषा में कही गई है उनका मुख्यार्थ प्रस्तुत किया जाए। भाषणो, संसद मे दिए गए वक्तव्यो तथा बहसो का अनुवाद इसी कोटि मे आता है।

(च) **भाषा या टीकापरक अनुवाद**—अनुवाद की यह आचार्य पद्धति कही जानी चाहिए। क्योकि इससे स्रोत-भाषा की मूल की व्याख्या के साथ अनुवाद भी किया जाता है। विषय विशेष के विद्वान का जैसा वैदुष्य होता है यह भाष्य या टीका उसी कोटि की होती है क्योकि इसमे कथ्य के स्पष्टीकरण के लिए भाष्यकार अपनी ओर से उद्धरण, उदाहरण और प्रमाण जोड सकता है। भाष्यकार कोरा अनुवादक नही होता, वह अपने व्यक्तित्व की महत्ता को अर्जित ज्ञान के माध्यम से कथ्य पर स्थापित करता है जैसे आचार्य विश्वेश्वर की 'हिन्दी अभिनव भारती', 'हिन्दी ध्वन्यालोकलोचन' आदि की वैदुष्यपूर्ण व्याख्याए या सस्कृत की काव्यशास्त्रीय रचना 'साहित्य-दर्पण' पर डॉ० सत्यव्रत सिंह की व्याख्या अथवा गीता पर बाल गगाधर तिलक का 'गीता-भाष्य'।

भारतीय साहित्य मे इस प्रकार के भाष्य और टीकाओ की व्यापक परम्परा रही है वेदो और उपनिषदो के अनेकानेक भाष्य इसी मनीषी परम्परा ने किए

है। आज भी गीता, उपनिषद्, रामायण, वेद आदि के नये से नये भाष्य किए जा रहे है और परम्परा समाप्त नही हुई है।

(छ) **आशु अनुवाद** (Interpretetion)—आज विश्व-भर मे आशु अनुवाद सास्कृतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। क्योकि जब अलग-अलग देशो के दो वी. आई पी व्यक्ति भिन्न-भिन्न भाषाओ में बातचीत करते है तो उन दोनो की बातचीत को सम्प्रेषित करने के लिए अनुवादक दुभाषिये (Interpreter) का काम करता है। आशु अनुवादक का भाषा-ज्ञान गहन एव अत्यन्त प्रामाणिक होना चाहिए। तमाम महत्त्वपूर्ण भाषणो, वार्ताओ, अनुबन्धो आदि का अनुवाद उसे कोश या सन्दर्भ ग्रन्थो की सहायता के बिना आमने-सामने करना पड़ता है। इस दृष्टि से भाषा ही नहीं, उसे दोनों देशों के इतिहास और संस्कृति तथा समाज से गहरा परिचय होना चाहिए। ताकि वह ऐसी भूल न करे, जिसके परिणाम भयकर हों। इस प्रकार के अनुवाद का एक विशिष्ट सास्कृतिक सन्दर्भ है। आज की प्रतियोगितापरक दुनिया मे आशु अनुवादको की दिन-प्रतिदिन जरूरत भी बढ़ रही है। युद्ध हो या सधि, व्यापार हो अथवा सास्कृतिक आदान-प्रदान आशु अनुवादक के बिना काम नही चलता। दूसरे देशो के प्रधान मन्त्री या विदेश मन्त्री यह अन्य विशिष्ट व्यक्तियो के कथ्य को सम्प्रेषित करने का आज यही महत्त्वपूर्ण साधन है।

अनुवाद विज्ञान है अथवा कला ?

आधुनिक संसार मे अनुवादको ने मध्य युग के अनुवादको की तुलना मे चाहे बहुत अच्छे अनुवाद न प्रस्तुत किए हो, अथवा नही किन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने कार्य की जटिलता और निहितार्थ को खूब भीतर से समझ लिया है। आधुनिक अनुवादको के अनुवाद इस तथ्यकी पुष्टि का बेहतर उदाहरण प्रस्तुत करते है। अनुवाद कार्य की आवश्यकता को समझते हुए एक आत्म-सजग अनुवाद-शैली उत्पन्न हुई है, जिसमें कला और विज्ञान दोनो के तत्त्व समाविष्ट हैं। अनुवाद की नयी-नयी तकनीकों को अपनाने के कारण भी अनुवाद एक नयी विशिष्टताए ग्रहण कर रहा है।

मूलत अनुवादक एक विशिष्ट प्रकार का व्याख्याता होता है। यह व्याख्याता शब्द और शब्द के सन्दर्भ को विश्लेपित करते हुए अपनी दृष्टि निर्मित करता है। निरीक्षण-परीक्षण तथा शब्द की अनुसन्धानात्मक कला में प्रवृत्त होता हुआ यह निर्णय लेता है कि उसे किस दिशा-विशेप मे प्रवृत्त होना है 'अनु' का अर्थ है— 'पीछे' और 'वाद' का अर्थ है 'कथन', अर्थात् पश्चाद्गमन या किसी तथ्य की प्राप्ति के लिए परिपृच्छा या परीक्षण करना। इस दृष्टि से तीन तथ्य हमारे सामने उपस्थित होते है—

(1) स्रोत-भाषा मे उपलब्ध सामग्री मे प्रस्तुत कथ्य का सन्दर्भ-विश्लेषण तथा वाक्य-विश्लेषण।

(2) सम्प्रेष्य कथ्य का लक्ष्य-भाषा मे पुनर्गठन।

(3) पुनर्गठित रूप का शैलीकरण।

इस प्रकार अनुवाद स्रोत-भाषा के पाठ के सम्प्रेष्य कथ्य का लक्ष्य-भापा के पाठ में पुनर्गठन एवं शैलीकरण करते हुए अन्तरण है। अर्थ को लक्ष्य-भाषा मे अतरित करते समय विज्ञान, कला और शिल्प तीनो की अपेक्षा रहती है। इसीलिए अनुवाद, कला, शिल्प और विज्ञान तीनों मिली-जुली प्रक्रिया है।

सामान्य ज्ञान और विशिष्ट ज्ञान मे गहरा पार्थक्य है। ज्ञान साधारण जानकारी है और उस जानकारी का विशेष ज्ञान होने पर ज्ञान का यह

विकास विज्ञान हो जाता है। परन्तु जब यह विशेष ज्ञान पुन. सामान्य ज्ञान की वस्तु बन जाता है तो उसे विज्ञान नही कहा जा सकता। विज्ञान वह पुन: उसी स्थिति मे बनता है जब उस विद्या का सामान्य ज्ञान नवीन कार्य-कारण सम्बन्ध से पुन. विशिष्ट ज्ञान में बदल जाता है। इस प्रकार सामान्य ज्ञान से विशिष्ट ज्ञान बनने की यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। इसी अर्थ मे विज्ञान किसी भी विषय का तर्काश्रित कार्य-कारणमय व्यवस्थित और विशिष्ट ज्ञान होता है। विशुद्ध विज्ञान मे नियमो के अपवाद नहीं मिलते। क्योंकि उसमें विकल्प के लिए कोई स्थान नही होता। एक प्रकार से विज्ञान के नियम सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक होते है। किन्तु इस प्रकार के नियम अनुवाद पर लागू नहीं हो सकते। वे देशकाल और स्थिति के अनुसार अपवादो को जगह देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अनुवाद केवल विज्ञान नही है और कुछ भी है।

इस प्रसंग मे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी उठता है कि अनुवाद को विज्ञान कहना कहा तक उचित है? वस्तुत. अनुवाद उस अर्थ मे विज्ञान नही है जिस अर्थ मे भौतिकी, जैविकी या गणित को विज्ञान कहा जाता है। यह भी सत्य है कि आज विज्ञान शब्द के प्रयोग में ढील या शिथिलता के लक्षण पाए जाते हैं। उसके ज्ञान का उन शाखाओ के लिए भी प्रयोग किया जा रहा है जो वास्तविक अर्थ में विज्ञान नही है। ऐसा कहने का प्रमुख कारण यही है कि विज्ञान का सबसे बडा आधार है—कार्य-कारण भाव की नित्यता। इस दृष्टि से ज्ञान की अनेक शाखाएं ऐसी है जिनमे कार्य-कारण भाव की नित्यता नहीं पाई जाती और फिर भी उन्हे चलते अर्थो मे विज्ञान कह दिया जाता है जैसे सामाजिक विज्ञान, राजनीतिक विज्ञान आदि।

आधुनिक विद्वान ज्ञान के क्षेत्रो को तीन वर्गो मे विभाजित करते है—

(1) भौतिक-विज्ञान (2) सामाजिक विज्ञान (3) मानविकी।

भौतिक-विज्ञान का सम्बन्ध उन वस्तुओ से है जो मानवकृत नही है? सामाजिक विज्ञान मानव के सामाजिक क्रिया-कलाप का कार्य-कारण सम्बन्ध से तार्किक अध्ययन है। मानविकी में वैयक्तिक और सृजनात्मक ज्ञान का अध्ययन-विश्लेषण होता है। यह भी मानना होगा कि ज्ञान के यह तीनो वर्ग परस्पर निरपेक्ष नही है। एक विज्ञान दूसरे विज्ञान की सीमा मे अनुप्रवेश करता है। ऐसी स्थिति मे अनुवाद-कार्य इन तीनों सीमाओं के भीतर आता है। एक ओर उसका सम्बन्ध भाषा-विज्ञान, ध्वनि-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान आदि से है, दूसरी ओर वैयक्तिक और सृजनात्मक साहित्य रूपो से सम्बद्ध होने के कारण आज वह मानविकी का प्रमुख अंग है। अत अनुवाद उस अर्थ मे विज्ञान नही है जिस अर्थ मे हम विशुद्ध विज्ञान (Pure sciences) सामाजिक विज्ञानों को विज्ञान कहते है। वह तो विज्ञान केवल इसलिए है कि उसके नियम कार्य-कारण सम्बन्धों पर आश्रित हैं चूंकि इन



नियमो में प्राय: अपवाद भी है, इसलिए अनुवाद विशुद्ध विज्ञान की सीमा मे नही आता। परन्तु अनुवाद मे कोई सिद्धान्त या नियम है ही नही, यह भी नही कहा जा सकता। नियम और अनुभव दोनो का योग होने के कारण वह अपनी प्रवृत्ति से विज्ञान की ओर झुकता है। अनुवाद के नियम अनुवादक के लिए साधना भी है और साध्य भी। अर्थात् अनुवादक स्रोत-भाषा के ज्ञान को लक्ष्य-भाषा में अन्तरित करते समय अपने व्यक्तिगत विवेक और ज्ञान की वैज्ञानिकता का पूरा उपयोग करता है।

अनुवाद के अध्ययन की प्रक्रिया विज्ञान के अध्ययन की प्रक्रिया मे निकटता रखती है। जिस प्रकार विज्ञान सम्बन्धी अनुशीलन मे तथ्य सकलन, तुलना, निरीक्षण, वर्गीकरण, विश्लेषण, नियम-निर्धारण आदि कार्य करते है उसी प्रकार की स्थितिया अनुवाद कार्य मे भी आती रहती है। वैज्ञानिक के समान अनुवादक को भी तटस्थ रहना पडता है एव अनुवाद के माध्यम मे एक भाषा के कथ्य को दूसरी भाषा के कथ्य में सही ढग से लाना पड़ता है। इस प्रकार वह सास्कृतिक भाषा का एक ऐसा सम्पर्क-सूत्र खड़ा करता है जिसकी उपयोगिता सामाजिक जीवन मे अत्यधिक है। वैज्ञानिक अनुसधानशाला मे बैठकर मानव-कल्याण की ओर प्रवृत्त होता है और अनुवादक स्रोत-भाषा की सामग्री से जूझकर मानव-कल्याण की ओर या विचार के आदान-प्रदान की सुविधा की ओर समानार्थक शब्दो या नये शब्दो को खोजकर आगे बढता है, दो देशो के भाषा-साहित्य और सस्कृतिपरक ज्ञान को सरलता, सुबोधगम्यता और दृष्टि की वैज्ञानिकता के साथ प्रस्तुत करता है। इस प्रकार अनुवादक कुछ अपवादो को छोडकर निश्चित नियमो का अनुसरण करता है। यह प्रक्रिया पूरी तरह से वैज्ञानिक है। यदि इसमे वैज्ञानिक नियम न होते तो मशीनी अनुवाद सम्भव ही नही हो सकता था। दो भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण के आधार पर सुनिश्चित वैज्ञानिक नियमो ने ही इस प्रक्रिया को सभव बनाया है। इस प्रकार अनुवाद की सम्पूर्ण मानसिकता वैज्ञानिक प्रक्रिया की मानसिकता से जुडी है और अनुवादक की पूरी पृष्ठभूमि कार्य-कारण सम्बन्ध से रहित नही है। इसी अर्थ मे अनुवाद विज्ञान कहा जा सकता है।

किन्तु अनुवाद मात्र विज्ञान ही नही है, वह कला और शिल्प भी है। कौशल का अग्रेजी रूपान्तर है—क्राफ्ट (Craft) और कला का—आर्ट (Art)। एक प्रकार से कला शब्द सभी प्रकार की लालित्य-बोधीय अनुभूतियो, अनुभवो और अभिव्यक्तियो के लिए आता है। कला को लेकर यह प्रश्न बराबर उठाये जाते रहते है कि कला मे सौन्दर्य की प्रकृति क्या है ? कलाकृतियो मे रूप और विषय-वस्तु के अन्तर्सम्बन्ध कैसे है ? कला और सामाजिक जीवन के अभिव्यंजक रूप क्या-क्या है ? समाज तथा समाज के विभिन्न वर्गो के बीच कला एव सौन्दय के

विषय मे कौन-सी धारणाएं है ? वैयक्तिक और सामूहिक जीवन मे कला का क्या स्थान है ? इतिहास के विशेष बिन्दु पर सामान्य जन के लिए कला का अर्थ और सार्थकता क्या है ? इस बात का उत्तर यह हो सकता है कि समाज-दर्शन और सौन्दर्यबोध-शास्त्र का जो आमना-सामना है वही कला और जीवन का तादात्म्य हे। इस प्रकार जीवनयुक्त कला एक क्रान्तिकारी प्रत्यय है। इसमे अनुभव-ससार और अभिव्यक्ति-प्रणालियो तथा हमारी सौन्दर्याभिरुचियों का रूपान्तरण होता हे। कला बिम्बो, प्रतीको, अभिप्रायो और अभिव्यजनाओ के आयामो मे उथल-पुथल मचाने की प्रक्रिया है। अभिव्यंजना की जटिल अभिव्यक्तियो, अनुभूतियो, प्रतीको के आदिम रूपो, फन्तासियो (Fantacies) सुख-दुखात्मक भाव-प्रत्ययो को विलक्षण ढंग से प्रस्तुतीकरण देने मे कला सबमे आगे है।

अनुवादक कला के इस स्वभाव मे घुल-मिल जाता है। साहित्यिक अनुवादक कलाकार की भांति कृति के रेशे-रेशे, सरचना (Structure) तथा वनावट (Texture) रूप तथा विषय-वस्तु मे गहरे से गहरे अवगाहन करता है। ऐसी दशा मे उसे सौन्दर्य-तत्त्व ग्राह्य होता है अर्थात वह सौन्दर्यानुभव करता है। कृति के साथ उसका यह अन्तरग साक्षात्कार उसे निर्वैयक्तिक अनुभूति मे बांधता है और कलाकार की भाति अनुवादक अपने वैयक्तिक आलोचनात्मक निर्णय को स्थगित कर देता है। कहना न होगा कि वह अनिवार्यत कला का सौन्दर्य वास्तविक पथो से सम्बद्ध हो जाता है। कृति के सम्पूर्ण सांस्कृतिक सन्दर्भ मे वह धंसता है और असूर्त्त मौन्दर्य-विन्दुओ को व्यवस्थित करने मे शक्ति लगाता है। इस प्रकार अनुवादक कला मे सम्बन्धित दूसरा व्यक्ति नहीं है। वह मात्र उल्थाकार या तर्जुमाकार या भाषान्तरकार नही है, वह समर्थ शक्तियों से पूर्ण आख्याता और कलाकृति के स्वभाव के अनुकूल शैलियो को बारीकी से खोजने वाला पुन.-सर्जक हे, चूंकि वह कृति का रिश्ता सम्पूर्ण सास्कृतिक सन्दर्भ से जोडकर देखता है और ऐसा करने मे ही उसकी प्रतिभा सन्तुष्ट होती है। वह लाक्षणिक, आलंकारिक, सलक्षी-वक्रोक्तिपूर्ण अर्थच्छायाओं से तादात्म्यीकृत होता है और रूपको तथा सादृश्यो की भापा मे अन्तर करता हुआ सन्दर्भ के सही आशयों को हृदयगम करके अनुवाद करता है। इस प्रकार से वह एक प्रकार की रचनात्मक प्रक्रिया से जुडता है और इस रचनात्मक प्रक्रिया मे सम्बद्ध होने के कारण ही अनुवाद एक कला है। हा, इस कला का शिल्प विषय एवं क्षेत्र के अनुसार वदलता है।

लेकिन सभी क्षेत्र अनुवादक के विस्तृत ज्ञान और सूझबूझ की अपेक्षा करते है। अतर केवल इतना है कि ज्ञान के साहित्य अनुवादक के विधि, विज्ञान आदि के पाठ का अभिप्रेत अर्थ समझना पर्याप्त क्योकि यह अनुवाद सूचनार्थ होता है और इस अनुवाद मे केवल विषय की जानकारी ही पर्याप्त है पुनप्रस्तुति मे शुद्धता कला-सौष्ठव वाक्य-विन्यास पर पूण ध्यान अपेक्षित होता ह भाषा के

कलात्मक गठन, सौन्दर्य-परक अन्तर्योजना और अन्तर्ग्रन्थन, बारीक अर्थच्छाया आदि पर दृष्टि केन्द्रित करने की अपेक्षा यहा नही होती है। लेकिन साहित्यिक रचना के अनुवाद में कृति के मूल सौन्दर्य निर्वाह की अपेक्षा रहती है। वहा लक्ष्य-भाषा मे सृजन की क्षमता अत्यधिक आवश्यक है। अनुवाद को कला मानने का कारण मात्र साहित्यिकता नही है। कलाकार के बिम्बो-प्रतीको और अभिप्रायों को कलापूर्ण ढंग से लाने मे ही अनवादक की मौलिकता है।

कला और शिल्प को अलग नही किया जा सकता। अलग-अलग दिखाई देने पर भी वस्तुत. यह एक-दूसरे से भिन्न नही होते। इस तरह शिल्प, कला की ही एक अवधारणा है। कला नैसर्गिक प्रतिभा का सहज विस्फोट है, इसलिए तमाम ललित कलाए अर्जन और शिक्षण को महत्त्व देने पर भी यही नारा लगाती है कि कलाकार उत्पन्न होते है, वे बनाए नही जाते। अनुवादक कलाकार की भाति सृजनकर्त्ता नही है क्योकि सृजन आत्म-साक्षात्कार के क्षणो की अनिवार्य प्रक्रिया है जिसका परिणाम है—आत्माभिव्यक्ति। परन्तु अनुवादक इस अर्थ मे कलाकार है कि वह कलाकार की आत्माभिव्यक्ति को अपने मे उतारता है, उससे पुन आत्म-साक्षात्कार करता है और तटस्थ भाव से उसको पुनः अभिव्यक्त कर देता है। इस अर्थ मे अनुवादक का व्यक्तित्व पुनरुत्पादक कलाकार का व्यक्तित्व है। कला सृजन है और अनुवाद पुनर्सृजन। यह एक प्रकार का प्रविधि और प्रक्रियागत पार्थक्य है।

अनुवाद मे कला और विज्ञान दोनों के तत्त्व निहित होते है। शिल्प भी कला के अन्तर्गत समाया हुआ है। ऐसी स्थिति मे यह कहना सही होगा कि अनुवाद न तो विज्ञान है, न कला है, न शिल्प है। सच्चे अर्थो मे वह कला का विज्ञान है। उसमे पुनराख्यान, मौलिकता, प्रातिभ शक्ति और प्रतिपादन सौष्ठव का योग होने के कारण ऐसा कहना सर्वथा उचित है।

अनुवाद और भाषाविज्ञान

हम चर्चा कर चुके है कि स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा की पाठ-सामग्री मे अन्तरित करने की प्रक्रिया अनुवाद है। इस प्रकार अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा मे भाषातरण है। भाषागत प्रतीको के प्रति सजगता अनुवादक का दायित्व है क्योकि इन्हे ठीक मे ग्रहण और पुनर्प्रस्तुत न कर पाने पर ही अनुवाद मे घपला हो जाने की सम्भावना रहती है। अनुवाद का सम्बन्ध भाषा से है और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन तथा अनुसंधान भाषा-विज्ञान का विषय है। यही कारण है कि अच्छा अनुवादक भाषा के मर्म को समझने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह भाषागत सरचना पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करता है। भाषागत सरचना के मुख्य आधार है—संज्ञा, क्रिया, विशेषण तथा अव्यय।

भाषा के अध्येता मानते है कि भाषा जीवन की ठोस वास्तविकता है। इसीलिए भाषा की परिभाषा और व्याख्या समय-समय पर विविध संदर्भों को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से की गई है। प्रमुख बात तो यह है कि भाषा सम्प्रेषण व्यापार का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है और यह माध्यम साकेतिक और यादृच्छिक प्रतीकों पर आधृत है। 'भाषा' एक व्यापक शब्द है जिससे सभी विशिष्ट भाषाओ का बोध होता है। अपनी प्रकृति के अनुसार भाषा एक मौखिक प्रतीकात्मक पद्धति है। प्रतीकार्थ विज्ञान की यह मान्यता सही है कि भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीको की पद्धति है। इस पद्धति के चार महत्त्वपूर्ण रूप है—

(1) भाषा एक पद्धति है।

(2) भाषा प्रतीको की पद्धति है।

(3) भाषा की रचना वाचिक प्रतीको से होती है।

(4) भाषिक प्रतीक यादृच्छिक होते है।

इसी प्रकार भाषा प्रतीक पद्धति से विचारो और भावो की सीधी अभिव्यक्ति है। सीधी दृष्टिगत होने पर भाषा एक जटिल मानसिक क्रिया है जिसमे अनेक अनुभव-प्रेरक प्रतीक अन्तर्निहित होते है। ब्लूमफील्ड ने कहा है—"भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की है जिसके से किसी

भापा-भाषी समुदाय के लोग अपने भाव या विचारों को एक-दूसरे तक सम्प्रेषित करते है।"

इसी प्रकार हाल तथा ट्रेगर की मान्यता है, "अन्ततोगत्वा भाषा यादृच्छिक प्रतीको की एक व्यवस्था ही होती है जिसके माध्यम से किसी भाषा-भाषी समुदाय के लोग एक-दूसरे से बातचीत करते है। इस विधान की सार्थकता यह होती है कि यह ऐसी वस्तुओं, विचारों, सकल्पनाओ तथा गतिविधियो की ओर निर्देश करती ह जिनका अस्तित्व उस समुदाय विशेष मे पाया जाता है।"

भाषा के इस सामाजिक-सास्कृतिक महत्त्व को रेखांकित करते हुए भाषाविद् सस्यूर ने लिखा है, "भाषा एक तरह का ऐसा सामाजिक विधान या सविदा है जो व्यक्ति वक्ता के माध्यम से किन्ही भी तरीको से न तो अस्तित्व मे लाया जा सकता है, न सशोधित अथवा विकृत किया जा सकता है। उससे एक ऐसा वाक्पथ अन्तर्निहित होता है जिसके अन्तर्गत ध्वनिबिम्ब अथवा श्रवण किसी अर्थ से जुड जाता है।"

इस प्रकार भाषा एक समाजबद्ध स्वतन्त्र पद्धति है, जिसे वास्तवपन की अनुकृति नही कहा जा सकता। प्रतीकात्मक होने के कारण वह सदैव सार्थक ध्वनियो से निर्मित होती है। ध्वनियां और सकेत पशु-पक्षी भी करते है किन्तु मनुष्य सार्थक ध्वनियो मे अपने को बांधकर विशिष्ट बनाता है। इसीलिए भाषा होने के लिए प्रथम अनिवार्य स्थिति है भाषा का पद्धतिबद्ध होना। वह तो भाषा हो ही नही सकती, जिसकी कोई पद्धति नही है। चूंकि भाषा मानव की यादृच्छिक प्रवृत्ति है, अत. उसमे किसी आधिभौतिक और दैविक शक्ति का हाथ नही है। वह स्वाभाविक प्रवृत्ति की भाति समाज मे अभिव्यक्ति की एक स्वाभाविक शक्ति है।

सामान्य प्रयोग या व्यवहार में भाषा शब्द दो रूपो का वाची है—

(1) सामान्य भाषा—जैसे जापानी, जर्मन, अग्रेजी आदि।

(2) विशिष्ट भाषा—जैसे राष्ट्रभाषा, राजभाषा, साहित्यिक भाषा, मानक भाषा, आचलिक भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा आदि जो किसी विशिष्ट रूप का बोध कराती है।

भाषा के अनेक रूपों मे मनुष्य वाक्शक्ति द्वारा विचारो को सम्प्रेषित करता है। किन्तु सामान्य ढग से रूपगत भिन्नता होने के कारण एक भाषा दूसरी भाषा से ध्वनिप्रतीक, समूह-सघटना, सरचना और शैली मे अलग होती है। इस भिन्नता का कारण ऐतिहासिक-सास्कृतिक है। भौगोलिक परिवेश और परम्परागत सस्कार भी अलगाव को जन्म देते है। इसलिए भाषा और सस्कृति का सम्बन्ध बहुत गहरा है। समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, कार्य-प्रणाली, भौगोलिक स्थितिया ऐतिहासिक और धार्मिक पृष्ठभूमि और आर्थिक आधार उसम प्रमुख भूमिका अदा करते हैं इसलिए सस्कृति मे मानव के भाषिक और

भाषिकेतर व्यवहार और सिद्धान्त समाहित है। प्रोफेसर जॉर्ज ग्युसदोर्फ इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे—"भाषा और सस्कृति को न तो अलग-अलग किया जा सकता है और न किया जाना चाहिए, वैसे ही जिस प्रकार भाषा और विचार को कभी अलग-अलग नही किया जा सकता। इस दृष्टि से भाषा और संस्कृति की पारस्परिकता एक अनिवार्य सम्बन्ध मे बंधी है।"

इस प्रकार भाषा दो तरह के अध्ययन और ज्ञान पर निर्भर है—वस्तु का ज्ञान और वस्तु विषयक ज्ञान। सस्कृति की सम्पूर्ण आत्मा भाषा में अभिव्यक्ति पाती है। स्वय ब्लूमफील्ड इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि किसी भी भाषा के स्वरूप और उसकी संस्कृति के ठीक ज्ञान के बिना भाषा पढ़ाने का मतलब बच्चे के कई साल नष्ट करना भर है और उसका परिणाम नगण्य होता है।"

इस कोण से भाषा की समझ सांस्कृतिक सदर्भो मे भाषागत प्रतीको और उनके अर्थो से निर्धारित होती है।

प्रायः भाषा-विज्ञान मे भाषा का तात्पर्य साहित्यिक भाषा से लिया जाता है। जिस भाषा मे लिखित साहित्य नही होता उसे भाषा न कहकर बोली कहा जाता है। जाहिर है कि यहा साहित्य से तात्पर्य विविध क्षेत्रो के ज्ञानपरक साहित्य से भी है केवल सृजनात्मक साहित्य मात्र से नही। सामान्य मान्यता है कि भाषा हमें साहित्य से सीखने को मिलती है और बोली जनसमाज तथा माता-पिता से। यह निरीक्षण का विषय है कि हमारे बोलने और लिखने मे सदैव दूरी या अन्तर रहता है। लिखने मे हम सयमन और नियत्रण से सुसस्कृत भाषा का प्रयोग करते है। इसीलिए भाषा के हिमायती बोली को गवारू, असभ्य या असस्कृत लोगों की भाषा कहते हैं। सस्कृत-सुशिक्षित लोगो की भाषा की तुलना मे यह और अपभ्रंश, अपभ्रष्ट (Corrupt) शब्दो से भरी हुई भाषा समझी जाती रही है। बोली सम्बन्धी इस भ्रम को आज खण्डित भी किया जा रहा है क्योकि एक शताब्दी पूर्व ब्रजभाषा 'भाषा' थी और खडी बोली 'बोली' किन्तु धीरे-धीरे खडी बोली न केवल भाषा बनी अपितु राजभाषा और राष्ट्रभाषा के पद पर समासीन हो गई। इस प्रकार बोलियां मानक अथवा आदर्श का अतिक्रमण करती रहती हैं क्योकि वे लोक-जीवन या लोक-सस्कृति से अपनी खुराक लेती है। असल मे जिन वाक् रूपो की कोई लिखित पद्धति नही है या अपढ लोग अनगढ़पन मे जिनका प्रयोग करते हैं वह भाषा के विपरीत पड़ती है और उन्हे बोली कह दिया जाता है। इसलिए बोली (Dialect) और भाषा (Lauagnge) के अन्तर को भाषा-विज्ञान सर्वेक्षणात्मक धरातल पर समझाना चाहता है।

भाषा-विज्ञान अनुवादक के लिए तो यह निर्देश देता है कि जहा तक सम्भव हो सके मानक भाषा (Standard 'anguage) ही प्रयुक्त होनी चाहिए किन्तु यदि विदेशी भाषा के किसी शब्द के लिए लोक-प्रचलित बोली या कोई शब्द बहुत

अधिक उपयुक्त हो और उसकी संदर्भगत अर्थवत्ता पर कोई संशय न हो तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए।

अनुवादक एक भाषा के प्रतीकों को दूसरी भाषा में भाषांतरित करता है और इन दोनों भाषाओं में प्रायः प्रकृतिगत भिन्नता होती है और यदि समानता भी होती है तो अक्सर ऊपरी समानता होती है। अतः दोनों में ही विशिष्ट सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परिवेश के कारण भावों, विचारों और क्रियाओं, स्थितियों और वस्तुओं को व्यक्त करने वाले प्रतीक इनके अपने होते हैं जैसे—अंग्रेजी में 'Chair' और हिन्दी में 'कुर्सी'। शब्दों के अतिरिक्त प्रत्येक भाषा में लिंग, वचन, काल, पुरुष, कारक आदि को अभिव्यक्त करने की निजी व्यवस्था होती है जैसे संस्कृत में तीन लिंग होते हैं और हिन्दी में दो। हिन्दी में कर्त्ता के लिंग के अनुसार क्रिया का लिंग होता है किन्तु अंग्रेजी में ऐसा नहीं होता। हिन्दी के वाक्य 'आप जाएंगे' और 'आप जाएगी' दोनों के लिए अंग्रेजी में 'You will go' ही होगा। इसी प्रकार हिन्दी में निर्जीव वस्तुओं को भी स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के अन्तर्गत रखा जाता है, जैसे 'कमरा बड़ा है,' 'कोठरी छोटी है'। किन्तु अंग्रेजी में निर्जीव वस्तुओं के लिए Neuter gender है। इसी भांति हिन्दी में एक वचन 'लड़का' के बहु वचन रूप तीन होंगे—लड़के, लड़कों, लड़को, किन्तु अंग्रेजी में Boy का बहुवचन केवल 'Boys' ही होगा।

अनुवाद कार्य में स्रोत-भाषा की व्यवस्था के स्थान पर लक्ष्य-भाषा की व्यवस्था रखी जाती है। इस कार्य में अत्यन्त सावधानी अपेक्षित होती है। इसबात को हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं—

"Mohan reads"—"मोहन पढ़ता है।"

"Shila reads"—"शीला पढ़ती है।"

अंग्रेजी में Mohan तथा Shila दोनों के लिए "reads" क्रियारूप प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार कर्त्ता के लिंग का कोई प्रभाव क्रिया पर नहीं पड़ा है। किन्तु हिन्दी में क्रिया कर्त्ता के लिंग के अनुसार ही चलेगी और कहा जाएगा "मोहन पढ़ता है।", "शीला पढ़ती है।" इसी प्रकार हिन्दी के "आप जाते हैं।", "तू जाता है", "तुम जाते हो" के लिए अंग्रेजी में केवल "You go" ही रहेगा।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि अनुवाद का सीधा सम्बन्ध तुलनात्मक भाषा-विज्ञान व्यतिरेकी भाषा-विज्ञान (Contrastive linguistics) से है। अनुवाद-समानार्थक शब्द (Translation equivalents) खोजने की प्रक्रिया ही अपने आप में एक तुलनात्मक प्रक्रिया है। अब इस तुलना के दौरान अनुवादक दोनों भाषाओं में संरचनागत असमानता के तत्त्व खोजता है तथा संप्रेष्य कथ्य को लक्ष्य भाषा की संरचना एवं शैली के अन्तर्गत प्रस्तुत करता है। तुलनात्मक प्रक्रिया में हम स्रोत भाषा के किसी शब्द की लक्ष्य भाषा में ऐसी समानार्थी

खोजने का प्रयास करते है जो स्रोत-भाषा के शब्द के समकक्ष अर्थ को प्रस्तुत करने मे अधिकाधिक समर्थ हो जैसे—अंग्रेजी के "Stiongest" शब्द के लिए हिन्दी मे हम लिखेगे "प्रबलतम" यह तुलना 'शब्द-समूह' तथा 'भाषा व्यवस्था' दोनो की ही होती है। भाषा की व्यवस्था के अन्तर्गत वाक्य-रचना, रूप-रचना और ध्वनि आते है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत आने वाले भाषा के छ तत्त्व—ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ रूप और लिपि सभी का स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक होता है। इस तुलना को अधिकाधिक व्यापक और प्रामाणिक बनाने के लिए भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन मे ध्वनि-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान, रूप-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान, शब्द-विज्ञान और लिपि-विज्ञान आदि सभी विधियों का सहारा लेना पड़ता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका के अनेक भाषाशास्त्रियो ने, जिसमे शापियर तथा ब्लूमफील्ड प्रमुख है, भाषा के अध्ययन को नयी दिशा दी है। इन विद्वानो ने जीवित भाषा तथा बोली पर अधिक बल दिया। इसीलिए भाषा-विज्ञान (Linguistics) तथा भाषा-शास्त्र (Philology) दो अलग-अलग विषय बन गए। ये दोनो ही शब्द भिन्न-भिन्न रूप और अर्थ मे प्रयुक्त होते है। Philology शब्द का व्यवहार प्राचीन भाषा के अध्ययन के सदर्भ मे होता है। अर्थात् इसका क्षेत्र प्राचीन भाषा-सामग्री के विश्लेषण तक सीमित है। किन्तु भाषा-विज्ञान (Linguistics) के अन्तर्गत आधुनिक जीवित भाषाओ और बोलियो का अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है कथ्य भाषा की ही व्याख्या की जाती है। आज के अनुवादक को भाषा-विज्ञान और भाषा-शास्त्र दोनो की ही सूक्ष्म और गहन पकड होनी चाहिए। प्राचीन और नवीन भाषा और साहित्य के ज्ञान के बिना अनुवाद सम्भव ही नही है क्योकि अनुवाद मे देश और काल दोनों ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते है। भाषा मे होने वाले रूपगत और अर्थगत परिवर्तनो को पहचानते हुए ही पुरानी कृतियो और पाठो को सही ढग से अनूदित करना सभव है।

भाषा-शास्त्र के अन्तर्गत सामान्य भाषा आती है और आधुनिक भाषा-शास्त्र के अन्तर्गत भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण कई रूपो मे किया जा सकता है—(1) वर्णनात्मक, (2) समकालिक, (3) ऐतिहासिक, (4) तुलनात्मक, (5) गठनात्मक। इनमें से समकालिक भाषा-शास्त्र अनुवाद की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसमें जीवित बोलियो का ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है। जीवित भाषा और बोली के लिए समकालीन साहित्य की जानकारी भाषाशास्त्री की तरह अनुवादक को भी होनी चाहिए।

अनुवाद कार्य के साथ भाषा का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक 'काल-बोध' भी जुडा रहता है प्राचीन कृतियों या शिलालेखों के पाठ का अनुवाद करते समय खोए हुए काल की खोज भाषा से करनी पड़ती है

अनुवाद और अर्थविज्ञान

अनुवाद मे शब्दो के माध्यम से अर्थगत अभिव्यजना को अधिकाधिक स्पष्ट किया जाता है। अनुवादक को यह सावधानी अनिवार्य रूप मे रखनी पड़ती है कि जिन शब्दो को स्थानान्तरित किया जाता है उनके साथ भाषातर अर्थव्यजना ज्यों की त्यो अन्तरित हो रही है या नही। अर्थात् स्रोत-भाषा मे व्यक्त किया गया अर्थ लक्ष्य-भाषा मे ठीक वैसा का वैसा अभिव्यक्त हो रहा है अथवा नही। इस प्रकार भाषा का अर्थ-तत्त्व अर्थ-विज्ञान मे सम्बन्धित हो जाता है। अनुवाद की समस्त सम्प्रेपण क्रियाएं जितनी भाषा और उसके अभिव्यजना-पक्ष से सम्बद्ध होती हैं उतनी ही या उनसे अधिक मूल पाठ-सामग्री के विचार या लक्ष्य से भी। मूल कथ्य सामग्री जिस या जिन विपयो की है उन विषयो के सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और प्रायोगिक अर्थ-तत्त्व का ज्ञान अनुवादक के लिए अपेक्षित है।

अर्थ-विज्ञान का मुख्य अभिप्रेत शब्द के वास्तविक अर्थ-व्यापार पर विचार करना है। एक ओर यह भाषा के मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन है, दूसरी ओर र्थमूलक परिवर्तनो की परीक्षा का वैज्ञानिक कार्य। फ्रासीसी विद्वानो ने ऐतिहासिक अर्थ-विज्ञान की अध्ययन-पद्धति का विकास किया और इसी से रचनात्मक अर्थ-विज्ञान की उद्‌भावना हुई। शब्द मनुष्य की धारणाओ से सम्बद्ध होते हैं और इन्ही धारणाओं से अर्थ-विधान का सम्बन्ध होता है। यदि कालान्तर मे धारणाए बदलती हैं तो शब्दो के अर्थो मे अन्तर आ जाता है। इसलिए अनुवादक और अर्थ-विज्ञान के अध्येता दोनो को ही भाषा की सरचनात्मक प्रवृत्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। भाषा-विज्ञान मे यात्रिक अनुवाद पर भी बहस हुई है और यह प्रश्न उठाया गया है कि कोशगत और व्याकरणिक अर्थो मे परस्पर क्या सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, सस्कृत का 'वान्' प्रत्यय हिन्दी मे इसी अर्थ मे ग्रहीत हुआ। एक ओर यह हिन्दी मे अधिकारी के अर्थ मे चलता है जैसे धनवान, विद्यावान, बुद्धिवान और दूसरी ओर यह प्रत्यय 'चालक' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा— गीलवान गाड़ीवान कोचवान आदि अत को इन प्रयोगो मे अर्थ निश्चयन हेतु प्रसग के महत्त्व की ओर जाना पड़ता है प्रयोगो में प्रसग

का वही स्थान है जो समाजशास्त्र, इतिहास और भूगोल मे परिवेश और परिस्थिति का होता है। प्रसगों की विधिवत् समीक्षा से ही अनुवादक अनेकार्थता, समानता, सादृश्यमूलक समस्याओ का समाधान कर सकता है।

अनुवादक को सरचनात्मक अर्थ-विज्ञान से बहुत सहायता मिल सकती है। भाषा के बाह्य पक्ष मे ध्वनि, रूप और वाक्य को स्थान मिलता है किन्तु भाषा के आन्तरिक अर्थमूलक अध्ययन मे सरचनात्मक अर्थ-विज्ञान अपनी व्यावहारिकता सिद्ध करता है। प्रत्येक भाषा की अपनी आर्थी-सरचना होती है जिसे अध्ययन प्रक्रिया के तीन स्तरो से सकेतित किया जा सकता है—

(1) कोशीय शब्द

(2) व्याकरणिक रूप

(3) आर्थी अभिव्यजना

उदाहरण के लिए 'विद्यार्थी' शब्द का कोशगत अर्थ है विद्या ग्रहण मे सलग्न, व्याकरणिक रूप है कर्त्ता-कर्ममूलक, आर्थी व्यजना है अन्वेषी, जिज्ञासु, होनहार आदि। आर्थी विशेषताओ के कारण अनुवादक को भाषा की वाक्पद्धति (Idiom) को विशेष महत्त्व देना पडता है।

अनुवादक की प्रथम समस्या तो है अर्थप्रेषण के लिए दूसरी भाषा मे प्रसग, संदर्भ और प्रसगानुकूल अर्थ-निर्धारण, दूसरी है अर्थ-निर्धारण मे ध्वनि प्रतीको का विशिष्टतावाची बोध तथा तीसरी है स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा मे लाते समय उसके अर्थ-निर्धारण की समस्या।

इस अर्थ-निर्धारण की समस्या से निपटने के लिए अनुवादक को अनेक बातो का ध्यान रखना पड़ता है क्योकि एक ही कृति अपने अनेक सहृदयो को अलग-अलग समय मे अलग-अलग अर्थबोध कराती है अर्थात् कृति मे अनेक अर्थ स्तर-निहित होते है, जिन्हे हर एक कोटि का सामाजिक अपनी-अपनी समझ के अनुसार ग्रहण करता है जैसे 'रामचरितमानस' सामान्य पाठक के लिए मात्र भक्तिभाव तथा कथा का अभिधार्थ है किन्तु विशिष्ट बौद्धिक स्तर वाले पाठको के लिए उसके अनेक स्तर है जो प्रबुद्ध से प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए आज भी चुनौती है। ऐसी स्थिति मे इस कृति का अनुवाद अर्थ के स्तर पर बहुत जटिल प्रक्रिया है क्योकि यह 'भावभेद रस-भेद अपारा' वाली कृति है। इसी प्रकार अन्य कृतियो के अर्थ-निर्धारण में अनुवादक किन-किन बातो का ध्यान रखे, यह प्रश्न आज हल तो नही हो पाया है किन्तु अर्थ-निर्धारण के लिए कुछ तथ्य प्रकाश मे आए है

(1) **अर्थ की सांकेतिक प्रक्रिया**—अनुवादक को अर्थ की साकेतिक प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। हर शब्द अर्थ का कोई चित्रात्मक या विम्बात्मक रूप छिपाए होता है। शब्द से चित्र मानसपटल पर आता है और वस्तु का अभिज्ञान होता है बोलने और समझने में समय पाठक की भाषा इसी बिन्दु पर

और प्रतीकात्मक हो जाती है, जैसे एक वाक्य है—'आनन्दभवन देश का पवित्र स्थान है' अब अनुवादक को इस वाक्य को पं० मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल के इलाहाबाद स्थित भवन से जोडना होगा। ऐसा न करने मे, न जोडने पर अर्थ भ्रष्ट हो जाने की सम्भावना है।

(2) **शब्द-शक्तियां और अर्थ-तत्त्व**—अर्थ-निर्धारण की दृष्टि से शब्द-शक्तिया तीन है—अभिधा, लक्षणा और व्यजना। इसी दृष्टि से शब्द के तीन प्रकार है—वाचक, लक्षक और व्यजक। स्फोटगत ध्वनियो से शब्द-सृष्टि होती है और शब्द के उच्चारण से अर्थ का बोध होता है।

(क) **अभिधा**—शब्द की अभिधामूलक भंगिमा परम्परानुमोदित एव रूढ अर्थ मे सम्बन्धित होती है। शास्त्र मे अभिधा को समझने के आठ साधन बताए गए है—व्याकरण, उपमान, कोश, आप्त-वाक्य, व्यवहार, वाक्य शेप, विवरण और सिद्ध पथ का सानिन्ध्य। किन्तु इन सब में व्यवहार ही मुख्य साधन कहा गया है। उदाहरणार्थ 'वह प्रवीण व्यक्ति है।' इसके अनुवाद मे शब्द के कोशार्थ का सरचनागत अर्थ ही चल जाता है। इसी प्रकार एक और वाक्य है—'वह बुद्धिमान व्यक्ति है', इसका अंग्रेजी मे अनुवाद होगा—'He is a wise person' अनुवाद करने पर भी दोनो भाषाओं मे इसका सामान्य अर्थ एक ही रहता है।

(ख) **लक्षणा**—अभिधेय अर्थ का योग होने पर भी लक्षणा से अर्थ बदलता है। अभिधा शब्दार्थ का वाच्यार्थ सम्बन्ध है किन्तु लक्षणा का लक्षण है मुख्यार्थ का बाधित होना। अर्थात् जिस अर्थ के समझने मे मुख्य अर्थ बीच मे पडता है उसे लक्षणा कहते हैं। उदाहरणार्थ --

'गगायां घोष' अर्थात् 'गंगा मे कुटी है।' गंगा मे कुटी कैसे हो सकती है? अत: इसके निवारणार्थ 'गंगा' शब्द मे लक्षणा के द्वारा अर्थ लिया गया—गगा तट पर कुटी है? 'घोष' शब्द में लक्षणा के द्वारा यह अर्थ भी ठीक हो सकता है—'गगा मे मगर है।' किन्तु उससे वक्ता के तात्पर्य की सिद्धि न होगी। अनुवादक को यह भी ध्यान रखना होगा कि लक्षणा रूढि के आधार पर है या प्रयोजन के आधार पर।

(ग) **व्यजना**—प्रसिद्धार्थ को अभिधा और लक्षणा परम्परा सम्बन्ध से स्पष्ट करती है किन्तु वे अप्रसिद्ध अर्थ का बोध कराने मे समर्थ नही होती। इस स्थिति मे व्यजना का कार्य दोहरा होता है। यह दोनों प्रकार के अर्थो का बोध कराती है। इसलिए व्यजना के द्वारा शब्द अर्थ-व्यजक बनते है। व्यजक ही ध्वनि है। व्यजना का अनुभव शब्द, शब्दार्थ, पद, पद के एक भाग, वर्ण, रचना-स्वभाव आदि में सर्वत्र व्याप्त होता है। इसलिए बडे से बडे अनुवादक को उसे पकड़ने मे चूकने का खतरा रहता है। उदाहरणार्थ 'प्रसाद' की कविता की प्रसिद्ध पंक्तियां हैं **'बीती विभावरी जाग री'**

अम्बर पनघट मे डुबो रही ऊषा नागरी

यहा कवि का वाच्यार्थ है कि एक स्त्री दूसरी स्त्री से कह रही है कि तारों-भरी रात्रि समाप्त हो गई है, तू जाग जा। किन्तु प्रतीयमान अर्थ इससे भिन्न है—'युगीन निराशा समाप्त होकर आशा का नवजागरण हो रहा है।' यह अर्थ यहा व्यजित अर्थ है।

(3) **प्रसगार्थ**—वाक्य में सरचनागत अर्थ से भिन्न एक अर्थ और होता है जिसे प्रसगार्थ कहा जा सकता है। इस अर्थ मे भौतिक योजक शब्द (Physical component words) गौण होते हैं। वक्ता की मानसिकता पर देश-काल का प्रभाव छाया रहता है। उदाहरणार्थ—'मैंने धीरेन्द्र वर्मा को बोलते हुए सुना है।' इस वाक्य मे 'बोलते हुए' पद का विशिष्ट अर्थ-बोध है क्योंकि यह अर्थ न तो कोशगत है और न ही व्याकरणिक। इसमे वक्ता धीरेन्द्र वर्मा का प्रभावशाली भाषणकर्ता-व्यक्तित्व ध्वनित होता है। इस वाक्य का आशय यह है कि धीरेन्द्र वर्मा वडे ही सफल वक्ता थे। इस वाक्य का अनुवाद करते समय प्रसगार्थ का तिरस्कार नही किया जा सकता। इस वाक्य का अंग्रेजी अनुवाद यदि किया जाए—'I have heard Dhirendra Verma speaking' तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। अंग्रेजी मे इसका अनुवाद किया जाना चाहिए—'I have heard Dhirendra Verma delivering lecture।

(4) **समरूपतामूलक प्रतिक्रिया का सिद्धान्त**—भाषा में शब्दों की अपेक्षा उनकी अर्थगत प्रतिक्रियाओ (Semantic reactions) पर ध्यान दिया जाता है। शब्द या ध्वनि-प्रतीक अर्थ-बोधक चिह्न मात्र होते है जैसे एक राजनीतिज्ञ कहता है—'समस्याओ के समाधान के लिए बूढ़ो को राजनीति से हटा दिया जाना चाहिए।' इस कथन पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रतिक्रिया होगी। लेकिन इसका मूल अर्थ यह है कि असामाजिक स्थितिया उत्पन्न करने वाले बूढ़ो को अलग कर दिया जाना चाहिए। अत: अनुवाद करते समय समरूपतामूलक प्रतिक्रिया वाले सिद्धान्त के द्वारा अधिकांश अर्थ-विकृतियों (Semantic malfunctionings) की व्याख्या की जा सकती है।

(5) **स्थान-भेद**—स्थान-भेद से कभी-कभी अर्थ-भेद हो जाता है। अलग-अलग स्थानो पर एक ही शब्द को अलग-अलग अर्थो मे प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ 'भोग' शब्द व्रज प्रदेश मे भगवान के प्रसाद के लिए प्रयुक्त होता है। 'बाल-भोग' और 'चरणामृत' का नाम सभी ने सुना होगा। किन्तु दिल्ली में 'भोग' शब्द 'श्राद्ध भोग' के सदर्भ मे प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार 'सड़ना' शब्द हिन्दी तथा पजाबी मे भिन्न-भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त होता है। हिन्दी के अर्थ के अनुसार ज्यादा पक जाने के बाद फल सड़ जाता है किन्तु आग पर ज्यादा सेंक दी जाने के बाद जो चीज जल जाती है उसे पजाबी मे सड़ना' कहा जाता है ऐसे स्थानिक प्रयोगो का ध्यान रखना अनुवादक के लिए है

इसी प्रकार ब्रज क्षेत्र मे 'लला' या 'लल्लू' शब्द दुलार का सूचक है। छोटे बालकों को प्राय इस नाम से बुलाया जाता है। इसी अर्थ में यह नाम सूचक भी होता है। हिन्दी के गद्य प्रवर्त्तको मे 'लल्लू जी लाल' के नाम से हम लोग भली-भांति परिचित है लेकिन आजकल खडी बोली में लल्लू शब्द 'बुद्धू' के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है।

(6) **पर्यायवाची शब्द**—पर्यायवाची शब्दों के अनुवाद मे अत्यधिक सावधानी अपेक्षित होती है, क्योंकि प्रत्येक प्रयोग के साथ अभिसूचक सदस्यो (Index members) का योग होता है। उदाहरणार्थ कमल, पंकज, जलज, नीरज, सरोज आदि शब्द स्थूल अर्थ में एक ही वस्तु का बोध कराते है। किन्तु ये सभी शब्द सर्वथा समान अर्थ सूचित नही करते। इसी प्रकार अंग्रेजी के beautiful, handsome, pretty शब्द स्थूल अर्थ मे तो एक-से है किन्तु इनमे सूक्ष्म अर्थ-भेद है जिनकी पकड अनुवादक को होना बहुत ही जरूरी है। अत. अनुवादक को समरूपतामूलक प्रतिक्रिया के सिद्धान्त के द्वारा पर्यायवाचिता से बचना चाहिए क्योंकि एक शब्द दूसरे का शत-प्रतिशत पर्यायवाची नही हो सकता।

(7) **मिथ अथवा मिथक**—कवि और विद्वानो ने 'मिथ' मे निहित सभावनाओ का प्रयोग अपने-अपने ढग से किया है। यूरोपीय वाङ्मय के शब्द 'Myth' को अभिव्यक्त करने वाला कोई शब्द हिन्दी मे नही है। कभी-कभार इसके लिए 'पुरावृत्त' 'पुराण कथा', 'देवकथा' आदि अर्थ-सकुचित अनुवादो से काम चलाया जाता है। प्रत्येक देश का साहित्य अनगिनत मिथों मे पूर्ण होता है। मिथ संस्कृति विशेष की विशेष देन होते है और उनमें किसी भी जाति का अवचेतन मन सुरक्षित रहता है। अत. मिथ एक प्रकार से आदिम युगीन भाषा और साहित्य है। मिथ मे कथा का अश रहता है। बिना कथा के उसकी कल्पना असम्भव है और उस कथा को सास्कृतिक सदर्भों में जाने बिना उसका अनुवाद सम्भव नही है। इसलिए साहित्य के अनुवादक को मिथको का विशेष ज्ञान होना जरूरी है। फ्रेजर और टी० एस० इलियट ने यह बात बार-बार दोहराई है। कॉलरिज की कविता 'Rhyme of the ancient Mariner' का अनुवाद कोई भी व्यक्ति तभी कर सकता है जब वह मिथ को भलीभाति समझता हो भले ही वह भाषा का कितना ही बड़ा जानकार क्यो न हो। इसी प्रकार मीरा की कविता है—'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।' यहा 'गिरधर' कृष्ण का पर्याय मात्र नही है वह ब्रजवासियो का कष्ट-निवारक गिरधर है जिसके साथ इन्द्र-कृष्ण की कथा जुडी है। ऐसी स्थिति विशेष मे मिथिकल शब्दो का अनुवाद न करके लिप्यंतरण (Transliteration) करना ही बेहतर होगा।

(8) **सांस्कृतिक स्रोत**—भाषा और सस्कृति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। इसलिए भाषा का शब्दार्थ सस्कृति-सापेक्ष होता है। इस कारण विभिन्न भाषाओ के स्वरूप और संरचना स्वयमेव अलग-अलग होते है अत किन्ही दो भाषाओ

मे मिलते-जुलने शब्द तो मिल जाते है किन्तु बिल्कुल समान अर्थों को व्यजित करने वाले शब्दों का मिलना बड़ा ही कठिन होता हैं। उनकी अर्थच्छायाओ मे भेद होता है। उदाहरणार्थ हमारी वाग्देवी सरस्वती है। काव्य-सृजन के आरम्भ मे सरस्वती का आह्वान करने की परम्परा है। यूनान की काव्य-प्रेरणा-दायिनी देवी 'Muse' है। कवि होमर ने उसकी वन्दना की है। सरस्वती तथा Muse दोनो ही काव्य-प्रेरणा की देविया हैं किन्तु दोनो अलग-अलग सस्कृतियो की प्रतीक है। तब तक अनुवाद मे 'Muse' के स्थान पर 'सरस्वती' और 'सरस्वती' के स्थान पर 'म्यूज' लिखना अनुचित नही होगा जब तक कि ऐसा करने से दोनों की जातीय विशिष्टता श्रुप्ट न हो।

इसके अतिरिक्त हर एक सस्कृति में रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, आचार-विचार, जाति-कुल, धर्मोपासना के विधि-विधान एव भौगोलिक स्थितिया विशिष्ट एव निजी होने के कारण उसकी भाषा-प्रयोग विधि भी विशिष्ट होती हे। ऐसे प्रयोगों को भाषातरित करना बडा ही कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, त्रिमूर्ति की धारणा हिंदू सस्कृति की धुरी है। मिथको, निजधरी कथाओ (Legends), लोक-विश्वासो के सास्कृतिक प्रतीको में इसकी जडे बहुत गहरी हैं। संस्कृति के ऐसे आदि बीज-बिम्बो का अनुवाद बडा ही कठिन होता है। इनका लिप्यतरण ही बेहतर होता है।

(9) **देशकाल**—अनुवादक को इस बात की सतर्कता रखनी चाहिए कि स्रोत-भाषा की सामग्री किस देश अथवा काल की है। कुछ शब्द ऐतिहासिक घटनाओ के साथ जन्मते हैं और कालान्तर मे उनका अर्थ बदलने लगता है जैसे हिन्दी साहित्य के भक्ति-आन्दोलन काल मे 'विभक्त' शब्द का अर्थ होता था विशेष प्रकार का भक्त, किन्तु आज इस शब्द का अर्थ हे 'पृथक-पृथक'।

(10) **सदर्भ**—सदर्भ अर्थ-निर्धारण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है क्योकि संदर्भच्युत हो जाने पर बात अपने लक्ष्य से ही भटक जाती है और शब्द के स्तर पर संदर्भ को समझकर ही अर्थ-ग्रहण किया जाता है, जैसे यह सदर्भ के अनुसार ही समझा जा सकेगा कि 'हरि' शब्द भगवान के लिए या वन्दर के लिए या व्यक्ति-विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है। अत. अनुवाद करते समय सही सदर्भ पकड पाना और लक्ष्य-भाषा में उसके अनुसार समानार्थक शब्द खोज पाना अत्यन्त आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी का शब्द है 'Receipt'। अब हिन्दी मे इसका अर्थ हम संदर्भ के अनुसार ही निर्धारित करेंगे और तदनुसार इसका अर्थ 'प्राप्ति' या 'आवती' या 'रसीद' या 'आय' लिखेंगे।

(11) **लिंग**—अर्थ-निर्धारण मे लिंग, वचन तथा समास की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है जैसे सस्कृत मे 'गो' शब्द (स्त्रीलिंग) मे इसका अर्थ 'गाय' होता है तथा पुलिंग मे 'बैल' वृक्षवाची शब्द पुलिंग होने पर वृक्ष के वाचक होते हैं और

नपुसक लिग होने पर फल के, जैसे 'पीलुफलम्'।

(12) **वचन**—कुछ शब्दो का एकवचन रूप मे प्रयुक्त होने पर कुछ अर्थ होता है तथा बहुवचन हो जाने पर कुछ और जैसे Wood—लकडी तथा Woods - जगल। इस बात के सम्बन्ध मे बडी ही सावधानी अनुवादक को रखनी चाहिए।

(13) **समास**—वाक्य मे पद पृथक-पृथक रहने पर सामान्य अर्थ का बोध कराते हैं किन्तु समास होने पर विशेष अर्थ का बोध कराते हैं। समास में समुदाय का अर्थ प्रधान होता है पद का अर्थ नही। उदाहरणार्थ 'ओदन' और 'पाकी' से शब्द बनाया गया 'ओदनपाकी'। इसका अर्थ औषधि के लिए रूढ़ है। समस्त पदो को अलग करते ही अर्थ बदल जाता है। इसका अनुवाद समस्त पदो के रूप मे ही होना चाहिए। अलग-अलग पदो के रूप मे नही। सस्कृत मे प्राय ऐसे समास भी होते हैं जिनमे एक शब्द ही समास के कारण एक से अधिक का अर्थबोध कराता है। जैसे 'पितरौ' का अर्थ है माता-पिता, 'भ्रातरौ' का अर्थ है भाई-बहन। अंग्रेजी मे 'पितरौ' के समकक्ष 'Parents' है।

(14) **वाच्य-भेद**—वाच्य-भेद से धातुओ के अर्थो में भेद हो जाता है। जैसे 'भिद्' धातु का 'टूटना' और 'तोडना', 'पच' धातु का 'पकना' और 'पकाना' अर्थ होता है। 'भिनत्ति काष्ठम्', 'भिद्यते काष्ठम्' धातु मे इस प्रकार के अर्थ-भेद का ज्ञान क्रिया के समस्त पद से होता है। यदि अनुवादक का ध्यान इस सम्बन्ध मे चूक जाता है तो अर्थ मे गड़बड़ी हो जाती है।

(15) **स्वर-भेद**—स्वर या वर्ण के भेद से शब्द के अर्थ मे भेद ही नही होता अपितु अर्थ कभी-कभी बिलकुल विपरीत भी हो जाता है। स्वर-भेद से वह शब्द उस अर्थ का बोधक नही रहता जिसका मूलत. था। इसलिए उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरो का ज्ञान आवश्यक है। संस्कृत मे इसे इतना अधिक महत्त्व दिया गया कि मंत्रोच्चार मे थोड़ी-सी त्रुटि रह जाने पर पाप लगने की कल्पना की गई। 'अमित्र' शब्द बहुव्रीहि समास से अन्तोदात्त है और इसका अर्थ है मित्र रहित। तत्पुरुष समास मे 'मि' उदात्त होने पर इसका अर्थ है शत्रु।

(16) **उपसर्ग संयोग**—उपसर्ग के संयोग से अर्थ-भेद होता है क्योंकि उपसर्गो के सयोग से शब्दो और धातुओ के अर्थो मे भारी अतर आ जाता है। कभी-कभी शब्द अपने अर्थ से विपरीत अर्थ का भी बोध कराने लगता है। उपसर्ग के द्वारा धातु का अर्थ बहुत दूर चला जाता है। उदाहरणार्थ 'स्था' धातु का अर्थ है रुकना किन्तु प्रस्थान मे इसका अर्थ विपरीत है—चले जाना। इसी प्रकार 'सस्थान', 'अनुष्ठान' और 'निष्ठान' मे इसका भिन्न अर्थ देखा जा सकता है।

(17) **प्रकरण-भेद**—वाक्य-प्रकरण अर्थ-औचित्य और देश-काल से शब्दों के अर्थों मे भेद हो जाता है किन्तु एक ही शब्द का विभिन्न वाक्यो विभिन्न

प्रकरणों आदि मे कुछ भिन्नता लिये अर्थ मे प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार एक ही शब्द के अर्थो मे भेद हो जाता है। प्रकरण-भेद से धातुओ के अर्थों म परिवर्तन हो जाते हैं, जैसे—

(i) 'आदित्यमुपतिष्ठते'—आदित्य की उपासना करता है।

(ii) 'रथिकानुपतिष्ठते'—रथिको का साथ करता है।

(iii) 'गंगा यमुनामुपतिष्ठते'—गगा यमुना से मिलती है।

देश-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है। अनेक भाषाओं के शब्दों का संग्रह करने पर यह बात पता चलती है—सस्कृत मे 'न' का अर्थ है 'नहीं', किन्तु चीनी मे 'ना' का अर्थ है 'वह' और रूसी भाषा में इसका अर्थ है 'पर' या 'ऊपर'।

(18) **साहचर्य**—साहचर्य के कारण एक शब्द का अन्य अर्थ मे प्रयोग होता है। 'सूर्य' को 'उषा' के साहचर्य से 'वत्स' (बछडा) नाम से निर्दिष्ट किया गया है। साहचर्य से अर्थ-विकास के अनेक उदाहरण मिलते है, जैसे—'कृष्णा' शब्द का मुख्यार्थ है 'कृष्ण वर्ण' किन्तु वेदो मे 'कृष्णा' शब्द रात्रि के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। महाभारत मे 'कृष्णा' शब्द का पयोग 'द्रौपदी' के लिए हुआ है। इस प्रकार 'कृष्णा' शब्द का अर्थ-संकोच हो गया।

(19) **सादृश्य** – नानार्थक शब्दो के अर्थ-विस्तार प्रदर्शित करते हुए सादृश्य को मुख्यता दी जाती है, यथा—'पाद' शब्द का मुख्य अर्थ था 'पैर'। उसी के सादृश्य के आधार पर पशु के एक पैर का चतुर्थांश देखकर चतुर्थांश के लिए 'पाद' शब्द का प्रयोग होने लगा। सादृश्य के आधार पर इसका इतना अधिक अर्थ-विस्तार हुआ कि 'खाट' आदि के पावे के लिए एक 'पाद' शब्द चल पड़ा। वृक्ष की जड के लिए 'पाद' शब्द प्रयुक्त होता है—'पादप'। अत अनुवादक को इस सादृश्य का विशेष ध्यान रखना पड़ता है ताकि अर्थ-निर्धारण हो सके क्योकि शब्द का अर्थ व्यावहारिकता पर आधृत रहता है—'शब्दालोक निबन्धना'।

(20) **मुहावरे तथा लोकोक्ति**—इन दोनो की पहचान होना अनुवादक के लिए अत्यत आवश्यक है। हर भाषा के मुहावरे तथा लोकोक्तिया नए तथा निजी भाव और उपमान छिपाए होते हैं। उन्हे ठीक से समझे बिना उनका साहित्यिक मूल्य नही समझा जा सकता। उदाहरणार्थ, हिन्दी की कहावत है—'टके की बुढिया, नौ टके सिर मुड़ाई।' अग्रेजी मे उसका अनुवाद किया गया—'A quarter worth verry, and three quarters to carry' यहा verry और carry की तुकबदी तो ठीक बैठी है लेकिन हिन्दी की कहावत मे जो भारतीय मनोभाव और कुटुम्ब पद्धति निहित है वह अग्रेजी मे अनूदित होते ही लुप्तप्राय हो गई। एक और उदाहरण लें—हिन्दी का शब्द है 'सुहागन'। अग्रेजी मे इसका अनुवाद होगा 'married women'। किन्तु 'सुहागन' कहने पर सौभाग्यपूर्ण स्त्री का जो चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है वह od woman कहने पर नही

उपस्थित होता । एक-दो बार तलाक देकर फिर से विवाह करने वाली स्त्री हिन्दी शब्द 'सुहागन' के अंतर्गत नही आएगी, वह केवल अग्रेजी के married woman के अतर्गत रहेगी। इतालियन कहावत कि 'अनुवादक गद्दार होते हैं' सही नही है। 'हैमलेट' की पंक्ति—Frailty thy name is woman का शब्दानुवाद होगा 'चचलना ! तेरा ही नाम स्त्री है।' यहा शब्दार्थ की दृष्टि से तो अनुवाद सही हो जाएगा। किन्तु वह अर्थ सम्प्रेपित नही हो पाएगा जो विशेष सदर्भ मे कवि का अभिप्रेत है। मुहावरो और कहावतो के सदर्भ मे एक और बात ध्यान देने की है। सामाजिक सदर्भ मे बदलाव के साथ भाषा की अर्थ-प्रक्रिया मे जो बदलाव आता है उसका सबसे रोचक उदाहरण मुहावरो और कहावतो मे ही देखने को मिलता है। स्थितियो के बदलाव के साथ उनमे अर्थ की शक्ति बदलती रहती है।

(21) **अर्थ-परिवर्तन**—यह नितात आवश्यक है कि लक्ष्य-भाषा की सामग्री स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री से अर्थ की दृष्टि से भिन्नत्व न प्राप्त कर ले और ऐसा न लगे कि अनुवाद होने के बाद दोनो भाषाओ ने अपने-अपने अर्थ-बोध का अलग-अलग वितान तान लिया है। यदि ऐसा प्रतीत हुआ तो अनुवाद की सगति ही खण्डित हो जायेगी। एक-सी अर्थ वाली अभिव्यक्ति स्रोत और लक्ष्य-भाषा दोनो मे सदैव मिल पाना संभव नही होता। इसलिए अनुवादक को निकटता या समीपता की तलाश रहती है और वह अनुवादक भाषा की सम्पूर्ण अर्थ-ध्वनियो को शब्दानुवाद मे न ढालकर भावानुवाद की ओर प्रवृत्त कर देता है। इस प्रकार अर्थानुवाद एक प्रकार का ठीक-ठीक भावानुवाद है।

अर्थ-विकास के साथ-साथ अर्थ-सदर्भ घटते-बढते रहते हैं। इसलिए भाषा मे शब्दो के अर्थो का परिवर्तन स्वाभाविक गति से होता रहता है। शब्द का एक ही अर्थ नियमित नही रह सकता। सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, सास्कृतिक कारण और उनके सदर्भ जैसे-जैसे बदलते रहते है, शब्दों के अर्थ-संदर्भ भी बिना बदले नही रह सकते। एक समय मे एक समाज जिन शब्दो को जो अर्थ देता है, कालांतर मे वही समाज उन शब्दो से उस अर्थ को छीनकर या तो उनमे नया अर्थ भरता है या पुराने अर्थ को नष्ट कर देता है। अर्थ-परिवर्तन की इस प्रक्रिया पर अनुवादक का ध्यान हर स्थिति मे रहना चाहिए क्योकि अर्थ-परिवर्तन के पीछे काम करने वाली शक्ति है मानव-मस्तिष्क, और यही कारण है कि शब्दो की अपेक्षा अर्थ मे परिवर्तन अधिक जल्दी होता है। शब्दो का काम तो सकेतो और भगिमाओ के माध्यम से भी चल जाता है किन्तु अर्थ का नही चलता। शब्द स्थूल होते है और अर्थ सूक्ष्म व्यंजनाओ से गर्भित तथा मनोमय और बौद्धिक भी होता है। यही कारण है कि शब्द के अर्थ-परिवर्तन की दिशाएं निश्चित नही की जा सकती। किन्तु इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रिया को अनुवादक भाषा-विज्ञान की अर्थ प्रक्रिया से समझ सकता है विद्वान शील न अर्थ-निर्धारण की तीन

दिशाए स्वीकार की है—

भारतीय निरुक्त और व्याकरणकार भी अर्थ-परिवर्तन की इन तीनो दिशाओं को समझाते रहे है—(1) अर्थ-विस्तार (Expansion of meaning) (2) अर्थ-संकोच (Contraction of meaning) (3) अर्थादेश (Transfer of meaning)।

(क) अर्थ-विस्तार—सामान्य शब्द जब विशेष अर्थ में और विशिष्ट शब्द जब सामान्य अर्थ मे प्रयुक्त होने लगता है तो अर्थ-विस्तार हो जाता है अर्थात् शब्द अपने शाब्दिक अर्थ मे अधिक विस्तार ग्रहण कर लेता है। उदाहरणार्थ, प्राचीन काल मे सस्कृत मे 'तैल' शब्द का अर्थ था तिल का सार। बाद मे महुआ, अलसी, मूगफली, सरसो, नारियल आदि सभी के सार को तेल कहा जाने लगा। सामान्य कथन की प्रवृत्ति बराबर बनी रही। बाद मे यह प्रवृत्ति इतनी बढी कि आजकल तेल शब्द का प्रयोग डीजल-पेट्रोल आदि के अर्थ मे भी किया जाता है। सस्कृत मे गाय खोज लाने को 'गवेषणा' कहते थे। किन्तु आज गवेषणा सभी अनुसधान कार्य या Research का पर्याय हो गया है।

अर्थ-विस्तार का प्रमुख कारण तो यही है कि जब शब्द सामान्य से विशिष्ट हो जाता है तब उसका प्रयोग अतिशयता से किया जाता है। ऐसी स्थिति मे भावो के सादृश्य या रूपात्मक सम्बन्ध के कारण उसमे अर्थ-वैविध्य पैदा हो जाता है क्योकि शब्द के अर्थ का कोई आकार नही होता। अस्पष्टता से भी अर्थ मे विकास होता है जैसे 'कादम्बरी' और 'सुरा' आदि शब्द। वस्तु-सादृश्य और लक्षणा से भी अर्थ विस्तार होता है—जैसे आरम्भ मे 'गो' शब्द का अर्थ पृथ्वी था किन्तु आज इसके अनेक अर्थ हो गए है। आलंकारिक प्रयोगो द्वारा भी अर्थ-विकास होता है—जैसे 'गाय' का प्रयोग सीधे-सादे व्यक्ति के अर्थ मे—'लड़की तो बिरकुल गाय है।' अनुवादक को शब्दार्थ और व्यजनार्थ दोनो ही पकडने होंगे। हिन्दी मे 'लोमडी' चालाकी का प्रतीक है। 'वह लडकी लोमडी है' जैसे प्रयोगो के प्रतीकार्थ पर ध्यान देना होगा।

(ख) अर्थ-सकोच—मानवीय ज्ञानात्मक सवेदना मे सूक्ष्मता तथा बौद्धिकता के विस्तार के साथ वस्तु, क्रिया और कर्म की शक्तियो को अभिव्यक्ति देने की सूक्ष्म क्षमता का भी विकास होता है। ऐसी स्थिति सामान्य अर्थ वाले शब्द को विशेष स्थिति मे सीमित कर देती है—यही अर्थ-सकोच की स्थिति है। इस स्थिति के भीतर सास्कृतिक कारणो की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ब्रील की मान्यता है कि जो राष्ट्र या जाति जितनी विकसित होगी उसमे अर्थ-संकोच उतना ही ज्यादा होगा। उदाहरणार्थ, प्राचीन काल मे श्रद्धापूर्वक किया जाने वाला कोई भी कार्य 'श्राद्ध' कहलाता था किन्तु धार्मिक कार्य से जुडकर 'श्राद्ध' शब्द मरणोपरात धार्मिक कर्मकाड का वाची रह गया। हिन्दी की सामान्य भाषा और साहित्य मे

प्रचलित 'वेदना' शब्द—'वेदने तू भी भली बनी'—'विद्' धातु से बना जिसका अर्थ है सुख-दुःखात्मक अनुभव। किन्तु सामान्य भाषा मे इसका अर्थ है पीडा। इस प्रकार संस्कृत के अनेक शब्दो का हिन्दी मे आते-आते अर्थसंकोच हो गया—जैसे 'धेनु' का अर्थ होता था दूध देने वाला प्रत्येक पशु, किन्तु हिन्दी मे इसका अर्थ केवल गाय है। अर्थ-सकोच कई प्रकार से होता है। समास, उपसर्ग, प्रत्यय और विशेषण के सयोग से भी प्राय अर्थ-सकोच होता है।

(ग) अर्थादेश—शब्द का अपने मूल अर्थ से हट जाना अर्थादेश है और जब कभी ऐसा हो जाता है तो अनुवादक को भयंकर कठिनाई का सामना करना पडता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कालातर मे शब्द का मूल अर्थ ही खो जाता है और सामान्य व्यक्ति को यह पता नही होता कि जिस अर्थ को हम भूल चुके है वह कभी लोक-व्यवहार का अग भी था। यह बात निम्नलिखित ठोस उदाहरणो से समझी जा सकती है—

(1) 'गवार' शब्द का मूल अर्थ था ग्रामीण। किन्तु आज यह शब्द एक गाली बन गया है जिसका अर्थ मूर्ख, असभ्य या जगली आदि माना जाता है।

(2) आर्य-ईरानी काल मे 'असुर' शब्द देवता का वाचक था। वैदिक काल मे भी 'असुर' देवता विशेष के लिए प्रयुक्त होता रहा। किन्तु कालातर मे इसका अर्थ हो गया 'राक्षस'।

कई बार सामाजिक और राजनीतिक कारणो से भी अर्थादेश जरूरी हो जाता है, जैसे—'देवानाप्रिय' सम्राट अशोक की पदवी थी और इस शब्द का एक विशेष ऐतिहासिक सदर्भ था तथा इसकी स्थिति सामाजिक थी। किन्तु कालातर मे यह शब्द अपने मूल अर्थ से एकदम दूर जा पडा और संस्कृत जैसी संस्कारवान भाषा मे अर्थ हो गया 'मूर्ख'।

अलग-अलग परिवारो की भाषाए अपनी सरचना मे भिन्न होती है। इसलिए अर्थ की दृष्टि से समानार्थक शब्द मिल पाना अपने आप मे ही एक समस्या होती है। यही कारण है कि अनुवाद करते ही एक भाषा के सकेतार्थ दूसरी भाषा के सकेतार्थो से दूर पड जाते है। इसलिए सदैव इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा पाठ मे लाते वक्त उसकी अर्थपरक मूल आत्मा सुरक्षित रह सके।

अनुवाद तथा ध्वनिविज्ञान

स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में पाठ-सामग्री को पुनर्प्रस्तुत करते समय ध्वनियों की विशेष भूमिका रहती है। अर्थ को व्यंजित करने के लिए ध्वनियों का आधार है 'शब्द'। अनुवाद करते समय शब्दो के इस आधार को तीन प्रकार से समझ सकते है

(1) वे शब्द जिनके अनुवाद समानार्थक मिल जाते हैं।

(2) वे शब्द जिनके अनुवाद समानार्थक मिलने में कठिनाई होती है।

(3) वे शब्द जिनका अनुवाद नही किया जा सकता।

जिन शब्दो के अनुवाद समानार्थक नही मिलते, उन्हे भाव के अनुसार अथवा व्यक्तिवाचक सज्ञाओ को ज्यो का त्यो या थोडे-बहुत परिवर्तन के साथ स्रोत-भाषा से ले लिया जाता है। इसीलिए स्रोत-भाषा की सामग्री को लक्ष्य-भाषा मे लाते समय ध्वनि-विज्ञान हमारी सहायता करता है। पारिभाषिक शब्द अपने साथ अनेक विधाओ के अनुशासन लिये होते है। ऐसी स्थिति मे प्रायः उनके समानार्थक नही मिलते। इस बिन्दु पर ध्वनि विज्ञान के एक भेद तुलनात्मक ध्वनि-विज्ञान मे अनुवादक को थोडी दृष्टि मिलती है। पर यहा वर्णनात्मक ध्वनि-विज्ञान बहुत दूर तक हमारा साथ नही देता क्योकि यह स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की ध्वनियो के आधार को समझाता है। यह आधार किन स्थितियो, सदर्भो और मानव मनोविज्ञान के प्रसगो से उपजे है, यह स्पष्ट करने की क्षमता वर्णनात्मक ध्वनि-विज्ञान मे न होकर तुलनात्मक ध्वनि-विज्ञान मे होती है। इसलिए अनुवाद मे तुलनात्मक ध्वनि-विज्ञान दिशा और दृष्टि इस अर्थ मे देता है कि वह स्रोत-भाषा की ध्वनि के लिए लक्ष्य-भाषा की किस ध्वनि को प्रातिनिधिकता दी जाए, इस साम्य और वैषम्य को स्पष्ट करता चलता है कि।

अनुवादक के सामने लगातार यह समस्या आती है कि स्रोत-भाषा की किस ध्वनि के लिए लक्ष्य-भाषा की किस ध्वनि को आदर्श मानकर ग्रहण करें। ऐसी स्थिति मे उसे तुलनात्मक ध्वनि-विज्ञान से स्रोत-भाषा की तुलना अनिवार्य रूप से करनी होगी। इस प्रकार की तुलना करने पर ध्वनि-सम्बन्धी कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते है

(1) भाषा की प्रकृति अलग होने पर भी कुछ ध्वनिया दोनो भाषाओ मे समान दृष्टिगत होगी।

(2) कुछ ध्वनिया लगभग समान दृष्टिगत होगी।

(3) दोनो भाषाओ की कुछ ध्वनिया एकदम भिन्न होगी जो स्रोत-भाषा मे तो है किन्तु लक्ष्य-भाषा मे नही है।

इस प्रकार अनुवाद के सन्दर्भ को ध्यान मे रखते हुए इन तथ्यो पर विचार किया जा सकता है।

(1) **समान ध्वनियां**—पूर्णतः समान ध्वनियां भाषाओ मे प्रायः कम मिलती है। सस्कृत मे क् ख् ग् घ् श् य् त् द् प् ब् म्—हिन्दी मे भी क् ख् ग् घ् श् य् त् द् प् ब् म्—इसी प्रकार हिन्दी और अग्रेजी मे स (S) व (B) न (N) म (M) व (V) श (Sc) और फ (F) व्यजन समान है। समान होने के कारण ऐसी ध्वनियो को स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में लाते समय किसी प्रकार की समस्या का सामना नही करना पड़ता।

(2) **लगभग समान ध्वनिया**—यहा पर लगभग समान ध्वनियो से हमारा तात्पर्य ऐसी ध्वनियो से है जो कुछ दृष्टियो से तो समान है किन्तु कुछ दृष्टियो से असमानता रखती हैं जैसे सस्कृत 'न' दत्य है किन्तु हिन्दी 'न' वर्त्स्य है। उसी प्रकार पजाबी की घ् भ् ध्वनिया हिन्दी की घ् भ् ध्वनियों के लगभग समान होती हैं पर हिन्दी के 'भाई' और 'घर' का उच्चारण पजाबी मे अलग ढग से होता है। अनुवाद करते समय स्रोत-भाषा की ऐसी ध्वनियो के लिए लक्ष्य-भाषा मे प्राप्त लगभग समान ध्वनियो का प्रयोग ही उचित है। इनके लिए यदि अनुवादक अन्य कोई मार्ग खोजना चाहेगा तो गलती होने की सम्भावना है, क्योकि ये ध्वनिया कही-न-कही प्रयोग-विधि पर भी टिकी हैं।

(3) **भिन्न ध्वनियां**—सुनने और बोलने के स्तर पर जो ध्वनियां भिन्नत्व रखती है, उन्हे भिन्न ध्वनिया कहते है। यहा यह ध्यान रखना है कि ध्वनि-विज्ञान का सम्बन्ध मनुष्य के मुह से निःसृत ध्वनियो के विवेचन-विश्लेषण एव वर्गीकरण से है, लिखित भाषा-रूप से इसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। लिखित रूप का सम्बन्ध वर्णो से है और वर्ण एव ध्वनि मे अन्तर है, इस तत्त्व को भली-भाति समझना चाहिए। क्योंकि अनेक भाषाओ मे एक ध्वनि के कई प्रतीक होते है–जैसे 'क' की ध्वनि के लिए अंग्रेजी मे 'k', 'c' और 'q' तीन प्रतीक है। फ़ारसी अथवा उर्दू की लिखावट मे 'स' ध्वनि के लिए 'से', 'स्वाद' और 'सीन' तीन प्रतीक है। लेकिन इस समस्या का समाधान ध्वनि-लिपि द्वारा किया जाता है जिसमे एक ध्वनि को एक सकेत द्वारा व्यक्त किया जाता है अरबी की 'जोय', 'ज्वाद', 'जाल' आदि ध्वनिया हिन्दी के सामान्य ज' से भिन्न है किन्तु हिन्दी मे उनके लिए ज' का ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि ज' ध्वनि उनसे मिलती जुलती है

अनुवादक को चाहिए कि ऐसी स्थिति मे लक्ष्य-भाषा मे प्रचलित ध्वनि का ही प्रयोग करे। ऐसे ही अंग्रेजी के 'k' 'c' 'q' के लिए हिन्दी में 'क' ही प्रयुक्त किया जाता है।

स्रोत-भाषा की ध्वनि या उससे मिलती-जुलती ध्वनि का लक्ष्य-भाषा मे अभाव भाषाओ की ध्वनिपरक भिन्नता के कारण होता है। कुछ ध्वनिया ऐसी होती है जो स्रोत-भाषा मे तो होती है किन्तु लक्ष्य-भाषा मे नही। ऐसे ध्वनिपरक शब्दो को लक्ष्य-भाषा मे लाने समय अनुवादक को बडी चुनौती का सामना करना पडता है। जैसे तमिल और मलयालम की विशेष प्रकार की ध्वनि 'ऴ'—जिसका उच्चारण 'ढ' के निकट होता है—हिन्दी मे नही है। 'ळ' मराठी मे तो प्रचलित है किन्तु हिन्दी मे नही। ऐसे ही हिन्दी की ड, ढ ध्वनिया रूसी या फ्रासीसी मे नही है। अनेक भारतीय भाषाओ की ट् ठ् थ् ध् फ् भ् महाप्राण ध्वनिया फ्रासीसी, अंग्रेजी आदि भाषाओ मे नही हे। ध्वनि की दृष्टि से यह एक ऐसी स्थिति है, जिसका समाधान कठिन होता है। यह समस्या उच्चारण सम्बन्धी समस्या हे। इस समस्या को सुलझाने के अनेक समाधान सुझाए जाते है। एक समाधान जो प्राय. सुझाया जाता है वह यह है कि यदि श्रोता को समझाने मे कोई कठिनाई न हो तो मौखिक अनुवाद मे ऐसे शब्दो का मूल ध्वनियो के उच्चारण के समान ही उच्चारण किया जा सकता है। यदि मूल ध्वनियो मे उच्चारण-सम्बन्धी कठिनाई हो तथा प्रतीत हो कि लिखित रूप मे मूल उच्चारण देने की कोई सगति नही है तो इस प्रकार की ध्वनि को लक्ष्य-भाषा की निकटवर्ती ध्वनियो मे ढाल दिया जाता है या सरलीकरण कर दिया जाता है। अनुवाद मे इस प्रकार का लचीलापन तो अपनाया ही जाना चाहिए जैसे तमिल के विशेष 'ल' का उच्चारण हिन्दी मे 'ल' के रूप मे होता है। हालाकि परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला ने इसके लिए—'ऴ' वर्ण शामिल कर लिया गया है।

अन्य भाषाओ से लिये जाने वाले शब्द—अनुवाद करते समय जो शब्द मूल भाषा से ज्यो के त्यो या किंचित ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ लिये गए है, उनके उदाहरण सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ में मिलते है। उनके अन्तर्गत व्यक्तियो, स्थानो, पुस्तको, सस्थानो आदि के नाम तथा पारिभाषिक शब्द आदि आते हैं। हिन्दी मे आए इस प्रकार के शब्द निम्नलिखित उदाहरणो मे देखे जा सकते है—अरस्तू (Aristotle), प्लातोन या प्लेटो (Plato), एचिलीस, एचिलस, (Achilles), अगथा, अगथान (Agathan), टालस्टाय, तोलस्तोय (Tolostoy), आरगोस (Argos), कुरान (कुरआन), इयोन (Ion), इलियड (Iliad), फ्रासीसी (French), जर्मन (German), अमरीका (America), लन्दन (London), मस्क्वा, मास्को (Mascow), रेस्त्रा (Restaurant), आदि। इसी तरह लिये गए पारिभाषिक शब्द है—इन्जीनियरी (Ingineering) वोल्ताज (Voltage

बैक्टीरिया (Bacteria), ब्यूरो (Bureau), वाउचर, (Voucher), बजट (Budget), स्टिबनाइट (Stibnite), जूरी (Jury), एटलस (Atlas), आदि।

इसी प्रकार अंग्रेजी में अन्य भाषाओं से आए तमाम शब्द हैं—Agenda, Souvenir Cafe, Ayis, Iris (g) Stigma (Greek) Radias (Latin), Jenus (Latin), Focus (Latin) Thorax (Greek)। लिप्यन्तरण करने की यह विधि आज इसलिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है कि सभी भाषाओं में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावली को ज्यों का त्यों लिप्यन्तरित कर लिया गया है। लिप्यन्तरण करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

(1) ध्वनि की दृष्टि से शब्द के उच्चारण पर ही हमें ध्यान केन्द्रित करना चाहिए—वर्तनी पर नहीं क्योंकि बहुत से शब्दों की वर्तनी तथा उच्चारण-रूप में भिन्नता होती है वे लिखे और तरह से जाते हैं और बोले और तरह से जाते हैं। वर्तनी के अनुसरण से उनके लिप्यन्तरण को पहचानना कठिन हो जाएगा—जैसे एक शब्द है Pneumonia—इसे 'निमोनिया' उच्चरित किया जाता है। इस दृष्टि से अनुवादक को इसका निमोनिया' उच्चारण ही ग्रहण करना चाहिए, वर्तनी पर नहीं जाना चाहिए। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति के नेता Rousseau का उच्चारण 'रूसो' है। इसे उच्चारण को इसी रूप में रखना चाहिए, क्योंकि हिन्दी में इस रूप में इसका प्रचलन काफी हो चुका है।

(2) यदि स्रोत-भाषा के किसी शब्द का वास्तविक उच्चारण से अलग तरह का उच्चारण लक्ष्य-भाषा में बेहद प्रचलित हो तो ऐसी स्थिति में भी लोक-प्रचलित उच्चारण ही अनुवादक को ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि लोक-प्रचलित उच्चारण को हटाकर अपना उच्चारण ऊपर से थोपना मानव मनोविज्ञान के विपरीत कदम रखना होगा। तब कोई भी समझदार अनुवादक ऐसा क्यों करेगा। वह स्रोत-भाषा में प्रचलित उच्चारण को ही प्रयोग में लायेगा—जैसे अरस्तू का शुद्ध नाम 'अरिस्टाटल' है। किन्तु हिन्दी में 'अरस्तू' ही प्रचलित हो गया है। यूनानी राजा 'अलेक्जेण्डर' के लिए 'सिकन्दर' हिन्दी में प्रचलित है, और वही चलना चाहिए। प्रसादजी ने 'अलेक्जेन्डर' की ध्वनि पर 'अलक्षेन्द्र' चलाया था, जिसे 'सिकन्दर' के लोक-प्रचलन ने चलने नहीं दिया। अतः लोक-प्रचलन से अनुवादक को नहीं टकराना चाहिए।

(3) एक कठिन समस्या यह भी है कि स्रोत-भाषा के एक शब्द के लक्ष्य-भाषा से अनेक उच्चारण प्रचलित हो जाते हैं, तब अनुवादक किसे ग्रहण करे, किसे छोड़ दे। जैसे अंग्रेजी के 'College' के लिए—कालेज, कॉलेज, कॉलिज, कोलेज, कौलिज आदि शब्द या अंग्रेजी के 'Croce' के लिए 'क्रोचे' तथा 'क्रोसे' शब्दों का प्रचलन। ऐसी स्थिति में स्रोत-भाषा के उच्चारण के समीपवर्ती बहुप्रचलित का चलना ही संगत होगा

भाषा के आन्तरिक ज्ञान के लिए उच्चारण ध्वनियों पर अनुवादक को हर स्थिति में ध्यान देना चाहिए। भाषा के स्वर-व्यंजन, उनका क्रम, बलाघात, स्वर, लहजे आदि की पकड़ यदि अनुवादक को होती है तो अनुवाद में चार चाँद लग जाते हैं। लेकिन यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि स्रोत-भाषा की ध्वनि-व्यवस्था, लक्ष्य-भाषा की ध्वनि-व्यवस्था पर 'हावी' न होने पाए। भाषा-वैज्ञानिकों ने ध्वनि-विज्ञान की जिन नवीन पद्धतियों की ओर संकेत किया है, उनसे भी यदि अनुवादक का थोड़ा परिचय हो तो वह काफी गहराई से ध्वनि-सम्बन्धी तमाम सन्दर्भों को ठीक से पकड़ सकता है। ध्वनिग्राम-शास्त्री उन असख्य प्रकार की ध्वनियों में ऐसी अर्थ-भेदक ध्वनियों को चुनता है जिनसे भाषा गठित होती है। भाषा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने वाली अल्पतम इकाई किसी भाषा की ध्वनि न होकर उसके ध्वनिग्राम ही होते हैं। ब्लूमफील्ड का यह संकेत ध्यान देने योग्य है कि ध्वनिग्राम व्यवच्छेदक (प्रभेदक) ध्वनि-स्वरूप की लघुतम इकाई है (A minimun unit distinctive sound feature)। जब दो ध्वनियाँ समान परिवेश में आती हैं तो वे दो पृथक् ध्वनिग्रामों का निर्माण करती हैं। ध्वनिग्राम के निर्धारण के लिए दो न्यूनतम युग्मों को लेना पड़ता है, यथा—'कला' और 'खल'। इस प्रकार अच्छा अनुवादक सतर्कता रखने पर ध्वनि-विज्ञान से लाभान्वित हो सकता है और होता भी है।

अनुवाद और वाक्यविज्ञान

अनुवाद करते समय स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के बीच की व्यवस्था की तुलना करते हुए वाक्य-योजना पर ध्यान अधिक केन्द्रित किया जाना चाहिए, क्योंकि वाक्य-योजना के त्रुटिपूर्ण विश्लेषण मे विशेष विवरणो की रूपान्तर-प्रक्रिया लडखडा जाती है और चयन-प्रक्रिया से उत्पन्न पाठ की क्रमबद्धता सरल मे जटिल बनकर व्याघातो मे फस जाती है। भाषा वैज्ञानिक सन्दर्भ मे वाक्य विज्ञान अनुवादक को भाषागत व्याघात समझने मे सहायक होता है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि की साहित्यिक भाषा और दूसरी ओर सामाजिक विज्ञान के विषयो मे प्रयुक्त भाषा या प्रशासनिक, विधिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक विषयो की भाषा मे गहरा अतर होता है। व्यावहारिक रूप से यह सब प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया से सम्बद्ध है जिसमे स्रोत-भाषा के प्रयोग का सामाजिक पक्ष और उसकी सास्कृतिक पृष्ठभूमि छिपी है। वाक्यो के अनुप्रयोग का वह परिस्थितिगत सदर्भ भी होता है जिससे ग्रहीता सास्कृतिक-ऐतिहासिक सदर्भ मे अर्थ को ग्रहण करता है। अत: वाक्य-योजना को केन्द्र मे रखना सर्वाधिक आवश्यक है।

सामान्यत पाठ कठिन से सरल की ओर न जाकर सरल से कठिन की ओर जाता है। वाक्य-योजना के इस पाठ्य सदर्भ को भाषा वैज्ञानिक आधारभूत सरचना से जोड़कर समझाने का प्रयास करता है और उसका सदर्भ सरल की ओर रहता है, जैसे दो वाक्य हैं—

(1) वह नटखट लडका है।

(2) वह लडका नटखट है।

इसमे प्रथम वाक्य को आधारभूत मानने के कारण भाषा वैज्ञानिक सरल और दूसरे वाक्य को व्युत्पन्न मानने के कारण जटिल मानता है। 'वाक्य भाषा की पूर्ण इकाई और लघुतम पूर्ण उपचार है।' (The sentence is the chief unit of speech, it may be defined quite simply as a minimum complete utterance) अनुवाद करते समय एक भाषा के वाक्यों को दूसरी भाषा की विशिष्ट वाक्य रचना मे रूपान्तरित करना पडता है इस कार्य को करते हुए

स्रोत-भाषा की वाक्य-रचना को लक्ष्य-भाषा की सरचनात्मक और व्यावहारिक प्रकृति के अनुकूल वाक्य-रचना मे बदलने की सावधानी बरतनी पड़ती है। जब एक भाषा के वाक्य का दूसरी भाषा के वाक्य मे शब्दश रूपातरण सम्भव नही हो पाता तो अर्थ के स्तर पर अन्तर करना पड़ता है और अर्थ का यह स्तर वाक्य योजना मे जुड़ा हुआ है। भाषा मे पद उतने महत्त्वपूर्ण नही होते जितने कि वाक्य महत्त्वपूर्ण होते हैं। स्वय वैयाकरण भी पदवाद का खण्डन करके वाक्यवाद की स्थापना करते रहे है क्योंकि वाक्य की सत्ता पद से पृथक् है। वाक्य मे ही अर्थ का ज्ञान और अर्थाभिव्यक्ति होती है, पद या पदो से नही। वाक्य मे तात्त्विक दृष्टि से पद का अस्तित्व नही है। इस प्रकार वाक्य के अर्थ की स्वतन्त्र सत्ता है।

शास्त्र से अलग भाषा एक व्यावहारिक वस्तु है। जब बच्चा मुख मे ध्वनिया उच्चरित करता है तब उनका अर्थ वाक्य के रूप मे प्रकट होता है, जैसे बच्चा कहता है 'दूध' तो मा पूरा अर्थ ग्रहण करती है कि उसे दूध चाहिए। निश्चित है कि वाक्य भाषा की इकाई है और भाषा वाक्यो का समूह। मनुष्य अपने समस्त सम्बन्धो को भाषा के माध्यम से ही सोचता, समझता और समझाता है। इसलिए अनुवाद करते समय वाक्य को पूरे सामाजिक-सास्कृतिक सदर्भ मे समझा जाता है। यदि हम इसमे काटकर उसे समझने की कोशिश करते है तो अर्थगत असंगतियां उत्पन्न होती हैं। उदाहरणार्थ, 'हेमलेट' का कथन 'To be or not to be that is the question ' 'हेमलेट' की सम्पूर्ण द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों को काटकर यदि देखा जाएगा तो वाक्य-रचना मे निहितार्थ की गहराई तक हम नही पहुच पाएंगे। केवल सतही अर्थ ही ग्रहण कर पाएगे। किन्तु अनुवाद मे वाक्य-रचना का गहनतम स्तर पकड़ने का प्रयास होना चाहिए। साहित्यिक वाक्यो मे शाब्दिक स्तर से अधिक उनका अर्थ-अनुगूजगत स्तर ही सार्थक प्रासंगिकता रखता है क्योंकि वह सामान्य वार्तालाप का वाक्य होता है। जब कभी अनुवादक इस तरह के वाक्य को अभिधेय बना देता है तो स्रोत-भाषा की अर्थशक्ति का अनुमान पाठक को नही लग पाता और लक्ष्य-भाषा की अर्थशक्ति को वह कुछ भी योग नहीं दे पाता। स्रोत-भाषा की वाक्य-योजना मे यदि समृद्ध ध्वनि-व्यापार-प्रक्रिया है तो वह अनुवाद के माध्यम से लक्ष्य भाषा मे भी समृद्ध रूप से प्रस्तुत हो सकती है।

विज्ञान या विधि ऐसे विषय होते है जिनका अर्थ सदैव वाक्य स्तर पर ही ग्रहण किया जाता है। इसलिए इनका अनुवाद करते समय वाक्य को ठीक वैसा का वैसा ही प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा। इसमे दूसरी बात, जो सामने आती है वह यह है कि अनुवादक को उस विषय की पूरी जानकारी होनी चाहिए, जिसका अनुवाद वह कर रहा है।

वाक्य भाषा का शरीर पक्ष है और वाक्यार्थ आत्म पक्ष इस दृष्टि से

वाक्य-विज्ञान वाक्य के उच्चारण पक्ष का भी अध्ययन करता है। वाक्य-विज्ञान मे वाक्य अवयवों का परस्पर सम्बन्ध, रूपान्तर-क्रम और वाक्य बनाने की रीति का वर्णन किया जाता है। इस अध्ययन की ऐतिहासिक, वर्णनात्मक और तुलनात्मक पद्धतिया भाषा वैज्ञानिको को मान्य है। वाक्य मे रचना-पक्ष को प्रश्रय देने वाले विद्वान रचना, रूप और प्रक्रिया तीनो पर दृष्टि केन्द्रित करते है क्योकि भाषा के सम्प्रेषण-पक्ष का सम्पूर्ण दायित्व वाक्य पर टिका होता है। चाहे वैयाकरण हो या अनुवादक पद और वाक्य के सम्बन्ध की सही ढग से जानकारी के लिए उसे दो सिद्धान्तो पर ध्यान देना होगा—अभिहितान्वयवाद तथा अन्विताभिधानवाद। ये सिद्धान्त मीमासकों ने पद और वाक्य के सबध के सदर्भ मे दिए है। अभिहितान्वयवादी पदों को महत्त्व देते है। अन्विताभिधानवादी वाक्यो को महत्त्व देते है। उनका कहना है कि वाक्यो को तोडने से पद बनते है। वाक्य की प्रथम सत्ता स्वीकार करने के कारण इन्हे वाक्यवादी भी कहा जाता है। आधुनिक भाषा-विज्ञान वाक्य को भाषा की सार्थक इकाई के रूप मे स्वीकृति देता है। इस दृष्टि से अन्विताभिधानवाद का महत्त्व और बढ़ जाता है।

विषय की स्पष्टता से समझने के लिए यहा निम्नलिखित तथ्यो पर विचार किया जा रहा है—

(1) **श्लेषात्मक वाक्य**—श्लेषात्मक वाक्य यदि स्वतन्त्र रूप से बोले या लिखे जाएं तो श्रोता या पाठक को उनका अभीष्ट अर्थ-ग्रहण करने मे कठिनाई होती है। अन्य वाक्यो के साथ प्रसंगानुकूल ही श्लेषात्मक वाक्य का अर्थ जाना जा सकता है, जैसे—'सुमन के खेलो सुन्दर खेल' इसका अर्थ दो प्रकार मे निकलता है एक फूल के सदर्भ मे और दूसरा सुन्दर मन के संदर्भ में। व्याकरणिक श्लेषात्मक वाक्य मे सही अर्थ-ग्रहण करने के लिए प्रसग निर्देश इसलिए आवश्यक है कि उसके बिना अर्थावगति असम्भव है, जैसे—'मा ने लेटे हुए बच्चे को दवा पिलाई।'

अब इस वाक्य मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता, क्योकि मा भी लेटी हो सकती है और बच्चा भी लेटा हो सकता है। इसी प्रकार 'दोनो आदमी दौडते हुए बच्चो के पास आए।' इस वाक्य मे यह स्पष्ट नही है कि दोनो आदमी दौडते हुए आए या बच्चे दौड रहे थे। इस प्रकार की वाक्य प्रवृत्ति संस्कृत मे भी बहुत है। इससे अनुवाद मे बड़ी ही कठिनाई होती है। उदाहरणार्थ 'अयोध्या अटवी. विदधि' इसके दो अर्थ हो सकते है—(1) जंगल को अयोध्या समझ, (2) अयोध्या को जगल समझ। अत श्लेषात्मक वाक्यो का अनुवाद करते समय सदर्भ को ध्यान मे रखना चाहिए।

(2) **आंतरिक और बाह्य सरचना**—आतरिक और बाह्य सरचना से भी वाक्यो के अर्थ बदलते है जैसे 'वह नाचने वाली है' इस वाक्य के दो अर्थ होंगे एक तो यह कि वह नाचना अभी शुरू करने वाली है और दूसरा

यह कि नाचना उसका व्यवसाय है। इस प्रकार दो अर्थ निकलने का कारण यह है कि वाक्य-संरचना के भीतर दो वाक्य काम कर रहे है। एक वाक्य तो यह काम कर रहा है कि वह नाच प्रस्तुत करने वाली है और दूसरा यह कि नाच उसका व्यवसाय है। अनुवादक को इस प्रकार के अनेकार्थी वाक्यो के संबध मे लगातार सतर्कता रखनी पडती है और बाह्य अर्थ से अधिक आतरिक अर्थ की ओर ध्यान देना पडता है, जैसे—'मुझे साडी पसन्द है।' इस वाक्य मे कई आतरिक वाक्य विद्यमान है—मुझे साडी पहनना पसन्द है, कोई साडी विशेष मुझे पसन्द है, दूसरो को साड़ी पहने हुए देखना मुझे पसन्द है, समस्त वेशभूषाओ मे मुझे केवल साड़ी ही पसंद है।

(3) **व्यंग्यपरक वाक्य**—व्यग्यपरक वाक्य प्राय: सभी भाषाओ मे जाने-अनजाने मौजूद रहते हैं। उनके अर्थ को समझने के लिए मूल पाठ के प्रसंग पर पुन:-पुन ध्यान दिया जाना चाहिए। जैसे 'प्रसाद' के नाटक 'चद्रगुप्त' में चाणक्य सम्पूर्ण व्याकरण की अव्यावहारिकता पर व्यंग्य करता है और यह व्यग्य सावधानी से पढने पर ही पकड़ में आता है—

"भाषा ठीक करने से पहले मैं मनुष्यो को ठीक करना चाहता हू।"

नाटकों में वार्तालाप के माध्यम से जीवन की लय को पकडने का प्रयास किया जाता है। इसलिए वहा ऐसे व्यंग्यपरक वाक्यो के बहुत से उदाहरण मौजूद होते है। उपन्यास मे भी ऐसे उदाहरण पर्याप्त मात्रा मे मिल जाते है 'गोदान' मे जमीदार के पूछने पर कि होरी तुम बहुत कमजोर हो गए हो, होरी का उत्तर ऐसा ही व्यंग्यात्मक है—

'मोटे वे होते हैं जो दूसरों का खाते हैं!'

इस वाक्य से वर्ग-सघर्ष की चेतना का पूरा अहसास है। प्रसंग को पकड़ने की थोडी-सी चूक से ही अनर्थ हो जाता है।

(4) **प्रतीकात्मक वाक्य-रचना**—सरचना किसी भी भाषा का मूलाधार ही नही होती, बल्कि प्रतीक क्रम व्यवस्था को चाहे वह प्राचीन हो या नवीन, दृष्टि मे लाती है। जब वाक्य मे कोई निश्चित प्रतीक चल पड़ता है तो उसका अनुवाद सीधे नही हो पाता। ऐसी स्थिति मे उसे टिप्पणी देकर समझाना पड़ता है, जैसे—

साप।
तुम सभ्य तो हुए नही;
नगर मे बसना
भी तुम्हें नही आया।
एक बात पूछू—'उत्तर दोगे ?'
तब कैसे सीखा डसना—
विष कहा पाया ?

सामान्य गद्य के वाक्य-विन्यास को कवि ने यहा तोडा है और कविता का विशिष्ट वाक्य-विन्यास अर्थ-योजना क अनुकूल चलाया है। 'तुम सभ्य तो हुए नही' पक्ति यदि गद्य की पक्ति होती तो कहा जाता 'तुम सभ्य नही हुए' किन्तु यहा कवि द्वारा शब्द-क्रम बदल दिए जाने से सम्पूर्ण अर्थ-विधान बदल गया है और वाक्य-योजना शब्दार्थ के लिए शब्द-क्रम पर आधृत हो गई है। यदि इस पक्ति का अग्रेजी मे अनुवाद किया जाए—'You have not become civilized' तो अभिप्रेत अर्थ सकेतित नही होता, क्योकि यहा पर 'तो' शब्द का जो ध्वन्यर्थ है वह अग्रेजी के इस वाक्य मे नही आ सकता। इसी तरह की स्थितियो मे अनुवादक को अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए अलग से आवश्यकतानुसार टिप्पणी देनी चाहिए।

(5) **अर्थ-तत्त्व और सम्बन्ध-तत्त्व**—दो भाषाओ की रचना-प्रक्रियाओ को समान रूप मे अर्थ-तत्त्व और सम्बन्ध-तत्त्व अभिव्यक्त करते हैं। यह ठीक है कि सम्बन्ध-तत्त्वो का कोई अर्थ नही होता। फिर भी वे अर्थ-तत्त्वो के साथ सम्पृक्त होकर सरचना को निखारने मे बहुत सहायक सिद्ध होते है। इसलिए इन दोनो को सरचनाओ का मेरुदण्ड कहा जाता है। जैसे—'मै घर मे लिखता हू।' इसमे सम्बन्ध-तत्त्व की दो स्थितियां है—'मै और 'ता' और बाकी 'मैं' 'घर' लिख' 'हू' सभी अर्थ-तत्त्व ह। इसलिए भाषा के निकटस्थ अवयवो पर अनुवादक को ध्यान देना चाहिए।

(6) **वैज्ञानिक भाषा और भावात्मक भाषा**—अत करण मे जितनी प्रवृत्तिया होती है उन्ही के अनुसार भाषा-प्रयोग होते है। अनेक बार ऐसा होता है कि अत करण की सभी प्रवृत्तियो को भाषा अभिव्यक्त नही कर पाती। ऐसी स्थिति मे वाक्य-रचना को बडा सघर्ष करना पडता है। महसूस होता है कि हमें पता तो है किन्तु अभिव्यक्त कैसे करें और अभिव्यक्त हो जाने पर भी वह पूर्णतया सम्प्रेषित कैसे हो। भावात्मक भाषा विन्यास मे ऐसी कठिनाई बहुत होती है। वैज्ञानिक विषय के कथन प्राय. मूर्त धरातल पर चलते है। रिचर्ड्स के मत से विज्ञान 'कथन' की रचना करता है और काव्य 'आभासी कथन' (Pseudo statement) की। विज्ञानपरक कथन मे सदर्भ परक प्रतीकात्मक मूल्य (Referential value) नही के बराबर होता है। किन्तु कविता मे जो प्रतीकात्मकमूल्य है, वह हमारे मनोभावो (impulses) से जुडा होता है। भावात्मक भाषा के अर्थ-तत्त्व चार चीजे समेटते है—(1) वाच्यार्थ (Sense), (2) भावना (Feeling), (3) सुर (Tone), (4) अभिप्राय (Intention)। इनमे से 'अभिप्राय' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए शैली-विज्ञान मानता है कि काव्य भाषा का एक विशिष्ट रूप है।

अनुवादक को काव्य के अभिप्राय को पकडने के लिए रूप (Form) की बजाए वस्तु (Content) और अर्थ (Meaning) की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए जैसे पीछे अज्ञेय की कविता का उदाहरण दिया गया था उसमे यदि अनुवादक 'रूप' पर ही उलझ जाएगा तो वह सम्पूण से दूर पड जाएगा

(8) **वाक्य के अवयव**—जिन पदों और खण्डो से वाक्य बनते है उन्हे ही वाक्य का अवयव कहा जाता है। किसी भी वाक्य के अर्थ के सही निर्धारण या ज्ञान के लिए उस वाक्य-विशेष के निकटतम अवयव को जानना अपेक्षित होता है, क्योंकि अर्थ की इकाइया निकटतम अवयवो पर ही आधृत होती है। वाक्य मे इनका स्थान दूर रहने पर भी अर्थ की दृष्टि मे निकट रहता है। अनुवादक के लिए यह जरूरी है कि वह इन निकटतम अवयवो को पकडने मे कोई चूक न होने दे। उदाहरणार्थ—

'We visited Zoo, Museum, Children's Park and Red Fort of Delhi.'

इस वाक्य का अनुवाद यदि यह किया जाए कि हमने चिडियाघर, म्यूजियम, चिल्ड्रन्स पार्क तथा दिल्ली का लालकिला देखा तो वस्तुत. यह अनुवाद गलत होगा। होना चाहिए—'हम दिल्ली का चिडियाघर, म्यूजियम, चिल्ड्रन्स पार्क तथा लालकिला देखने गए।' क्योकि 'दिल्ली का' सम्बन्ध इन चारो स्थानो से है न कि अकेले लालकिले से। इसी प्रकार एक और वाक्य है—

'Well known experts and professers were invited'

इस वाक्य का अनुवाद दो प्रकार से हो सकता है—

(1) सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ तथा आचार्य आमन्त्रित किए गए।

(2) सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ तथा सुप्रसिद्ध आचार्य आमंत्रित किए गए।

अतः वाक्य मे अलग-अलग शब्दो की बजाए निकटतम अवयवो पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि वाक्य मे इन अवयवो की स्थिति को भलीभांति समझा नही जाएगा तो अर्थ समझने मे भयकर भूल होने और परिणामस्वरुप भ्रष्ट अनुवाद हो जाने की सम्भावना है। Is the work done' मे 'is' तथा 'done' दूर-दूर रहते हुए भी एक-दूसरे के निकटतम अवयव है।

(9) **प्रयोग-रीति** (Usage)—हर एक भाषा का अपना विशिष्ट मुहावरा होता है। इस विशिष्ट मुहावरे की पहचान उस भाषा विशेष को पढ़ने-लिखने और बोलने मे आती है। इसलिए वाक्य-रचना के स्तर पर मुहावरे का विशेष महत्त्व है। वस्तुत यह किसी भाषा मे किसी बात को कहने का ढंग या रीति विशेष होती है। अनुवाद करते समय भाषा की इस प्रवृत्ति की ओर सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए। स्रोत-भाषा मे कही गई बात का लक्ष्य-भाषा में अर्थ-बोध करा देना ही पर्याप्त नही होता। वह बात इस ढग से पुनर्प्रस्तुत की जानी चाहिए कि अटपटी न लगे अपितु ऐसा लगे कि वह बात हम मूलतया लक्ष्य भाषा मे ही कह रहे है। तात्पर्य यह है कि अनुवाद करते समय कथ्य को लक्ष्य-भाषा मे अतरित करते समय लक्ष्य भाषा का सहज स्वरूप नष्ट नही होना चाहिए भाषा की का सहज ढग उसका वाक्य-विन्यास गठन उसकी रवानी का ध्यान

नुवाद करते समय सदैव रखा जाना चाहिए। स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा के भिन्न मुहावरे के बीच सामजस्य बैठाने की यह प्रक्रिया भाषा की प्रयोग-विधि (Usage) को केन्द्र मे रखे बिना असम्भव है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी मे कहा जाता है 'He has taken his examination.' किन्तु हिन्दी में इसके लिए कहा जाएगा 'वह अपनी परीक्षा दे चुका है।' इसी प्रकार हिन्दी में हम कहते हैं : मेरी घडी में साढे चार बजे है।' किन्तु अंग्रेजी मे यदि इसका अनुवाद कर दिया जाए . 'It is half past four in my watch' तो यह सर्वथा गलत हो जाएगा, क्योंकि अंग्रेजी मे कहना चाहिए 'It is half past four by my watch.'

तात्पर्य यह है कि यदि भाषा की मूल प्रवृत्ति की अवहेलना करते हुए समानार्थी शब्द प्रस्तुत कर दिए जाएंगे तो अनुवाद सर्वथा गलत, बेढगा और हास्यास्पद बन जाएगा। हमारी यह बात नीचे दिए गए कुछ उदाहरणो से स्पष्ट हो जाएगी—

1 वह आराम करने के लिए घर गया।
He went home for resting. (गलत)
He went home to rest (सही)

2. वह अभी-अभी कलकत्ता से वापस लौटा है।
He has just returned back from calcutta (गलत)
He has just returned from calcutta. (सही)

3. कार मे जगह नहीं है।
There is no place in the car. (गतल)
There is no room in the car. (सही)

इसी प्रकार अंग्रेजी से हिन्दी मे अनुवाद करते समय—

1. He met me on the way
वह मुझे रास्ते पर मिला। (गलत)
वह मुझे रास्ते मे मिला। (सही)

2. She is taking tea
वह चाय ले रही है। (गलत)
वह चाय पी रही है। (सही)

3. He is playing on Guitar
वह गिटार पर खेल रहा है। (गलत)
वह गिटार बजा रहा है। (सही)

4 Plese sing a song for me.
कृपया मेरे लिए एक गाना गा दीजिए। (गलत)
कृपया मुझे एक गाना सुना दीजिए सही

(10) लिंग अनुवादक को स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा मे प्रचलित व्याकरणिक लिंग के नियमो और प्रयोगो से सुपरिचित होना चाहिए जिन भाषाओं मे व्याकरणिक लिंग है, उनका अनुवाद करते समय विशेष सावधानी आवश्यक है अन्यथा बहुत बडी गलती हो जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी भी भाषाएं हैं जिनमे लिंग हैं ही नही—जैसे तुर्की, फारसी आदि। ऐसी भाषाओं का अनुवाद उन भाषाओं मे करते समय, जो लिंग प्रधान है, बडी ही सतर्कता से काम लेना चाहिए। लिंग सम्बन्धी नियम विभिन्न भाषाओं मे अलग-अलग ही होते है। अंग्रेजी मे निर्जीव वस्तुओं के लिए Neutre gender है। किन्तु हिन्दी मे निर्जीव वस्तुए स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के अन्तर्गत ही आती है—'फूल रखे है' 'किताबें रखी है' मे फूल पुल्लिंग है, किताब स्त्रीलिंग। अंग्रेजी से हिन्दी मे अनुवाद करते समय इसका पूरा ध्यान रखना होगा।

इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे है जो हिन्दी मे पुल्लिंग है तथा अंग्रेजी मे स्त्रीलिंग, जैसे—Spring, ship, moon अंग्रेजी मे स्त्रीलिंग है किन्तु हिन्दी में पुल्लिंग। अंग्रेजी के कवि कीट्स की पंक्ति है—'Happly the Queen Moon is on her throne' इसका शब्दानुवाद होगा 'सम्भवतया महारानी शशि अपने सिंहासन पर विराजमान है।' किन्तु हिन्दी के लिंग के अनुसार लिखा जाना चाहिए 'सम्भवतया' महाराज शशि अपने सिंहासन पर विराजमान है।' लेकिन यह भी शाब्दिक अनुवाद होकर रह जाएगा क्योंकि हिन्दी का मुहावरा तो भिन्न है वहा तो 'पूर्णिमा का चाद' अथवा 'पूर्ण चद' प्रयोग ही प्रचलित है। इसी प्रकार हिन्दी का वाक्य है—'जहाज तथा उसकी सभी नावे तूफान मे नष्ट हो गई।' अंग्रेजी मे इसका अनुवाद 'The ship and all his boats were destroyed in the storm' सही नही होगा बल्कि 'The ship and all her boats were destroyed in the storm सही होगा

हिन्दी मे लिंग बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि ये क्रिया, आकारात विशेषण और सम्बन्ध कारक के परसर्ग को प्रभावित करते है—

लडका आया है—The boy has come.

लडकी आई है—The girl has come.

यहा अंग्रेजी के वाक्यो मे कर्त्ता के लिंग के अनुसार क्रिया प्रभावित नही हुई किन्तु हिन्दी के वाक्यों मे क्रिया कर्त्ता के लिंग से प्रभावित हुई। अंग्रेजी के वाक्यो मे—

He is a good boy

She is a good girl

लडका और लड़की दोनो के लिए good शब्द का इस्तेमाल किया गया है किन्तु हिन्दी मे 'अच्छा लडका' और 'अच्छी लड़की' होगा। इसी प्रकार Ram's

mother, Ram's father के लिए हिन्दी मे 'राम की माता' तथा 'राम के पिता' होगा।

हिन्दी मे प्राणिवाचक लिग सरलता से मालूम हो जाते है क्योंकि उनके जोड़े होते है। किन्तु छोटे आकार के प्राणियो मे जैसे जोक, जू, मक्खी आदि मे लिग निर्णय की कठिनाई होती है। बंगला, उड़िया, असमिया मे प्रमुखतया विशेषण तथा क्रिया में लिग-परिवर्तन नही होता। इन भाषाओ मे हिन्दी मे अनुवाद करते समय लिग सम्बन्धी कठिनाई सामने आती है।

प्राकृतिक और व्याकरणिक लिगों की जानकारी से अनुवादक लक्ष्य-भाषा के वाक्य-विन्यास को इस अर्थ में समृद्ध बनाता है कि वह जटिल वाक्य-विन्यास-प्रक्रिया को सरल वाक्य-विन्यास-प्रक्रिया की ओर मोड दे सकता है। व्याकरणिक लिगो के शब्दों जैसे—ग्रन्थ, पुस्तक आदि में अर्थ की दृष्टि से अन्तर नही होता किन्तु फिर भी लिग की दृष्टि से इनमे अन्तर है। 'ग्रन्थ' पुल्लिग है तथा 'पुस्तक' स्त्रीलिग।

विभिन्न भाषाओ मे लिगो की व्यवस्था अलग-अलग है। हिन्दी मे दो लिग है, सस्कृत, ग्रीक, जर्मन और रूसी में तीन। वस्तुत लिगभेद की इतनी ही उपयोगिता है कि वह भाषा को व्याकरणिक अन्विति देता है।

(11) **वचन**—वचन सम्बन्धी नियम प्रत्येक भाषा के निजी होते है। हिन्दी, अग्रेजी आदि मे दो वचन हैं किन्तु सस्कृत मे तीन वचन होते है, वहा दो के लिए द्विवचन रखा गया है। हिन्दी में बहुवचन की धारणा व्यक्ति एव समूह के आधार पर है। अंग्रेजी मे वचन सम्बन्धी नियम विशिष्ट होते हैं जैसे कुछ वस्तुओ मे एक-वचन और बहुवचन रूप समान होते है—Swine, sheep, deer, hair। संख्यात्मक विशेषणो के बाद प्रयोग करते समय pairs, dozen, stone, hundred, thous and आदि के भी बहुवचन नही बनाए जाते जैसे—'I bought two dozen pencils' कुछ सज्ञाए ऐसी होती है जिन्हें बहुवचन के रूप मे ही प्रयुक्त किया जाता है जैसे—socks, cissors, trousers, spectacles, antials आदि। इसी प्रकार कुछ सज्ञाए एकवचन होने पर भी बहुवचन के रूप में प्रयुक्त होती है जैसे—cattle poultry आदि। हिन्दी में भी कुछ शब्द ऐसे है जो बहुवचन होने पर भी एकवचन के रूप मे प्रयुक्त होते है जैसे 'वह सात वर्ष का है।' हिन्दी मे आदरसूचक वाक्यो मे एकवचन के स्थान पर भी बहुवचन का प्रयोग किया जाता है जैसे—'मेरे पिताजी आए हैं' पिताजी एक वचन पर भी 'आए हैं' बहुवचन का प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी मे ऐसा कोई नियम नही है। ऐसी स्थिति मे अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय अनुवादक बहुधा ध्यान नहीं रख पाता और जब वह 'Shakespeare was a great poet' के लिए 'शेक्सपियर महान कवि था' लिख देता है तो हिन्दी भाषा की दृष्टि से यह अशिष्ट-सा लगता है क्योंकि हिन्दी के अनुसार लिखा जाना

चाहिए 'शेक्सपियर एक महान कवि थे।'

एकवचन 'मैं'। (I) के लिए भी कुछ हिन्दी भाषी क्षेत्रों में 'हम' का प्रयोग होता है और 'हम जाएंगे' का अर्थ वस्तुतः 'मैं जाऊंगा' ही होता है। ऐसी स्थिति में अनुवादक को प्रसंग का ध्यान रखना चाहिए, तभी वचन की दृष्टि से अर्थ का सही निर्धारण हो सकेगा।

(12) **पुरुष**—पुरुष की कल्पना वक्ता, श्रोता और उनसे भिन्न तीसरे व्यक्ति के आधार पर हुई है। अनुवाद करते समय लक्ष्य-भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार पुरुष रखा जाना आवश्यक होता है, जैसे हिन्दी का वाक्य है—'राम ने कहा कि मुझे भूख नहीं है' अंग्रेजी मे यदि ज्यो का त्यो अनूदित कर दिया जाए : 'Ram said that I am not hungry' तो यह गलत होगा। अंग्रेजी भाषा मे इसे कहा जाएगा : 'Ram said that he was not hungry.'

(13) **पदक्रम**—सभी भाषाओं का पदक्रम अलग-अलग होता है। हिन्दी, अंग्रेजी आदि मे पदक्रम की निश्चित-व्यवस्था है किन्तु संस्कृत, रूसी आदि का पदक्रम स्वतंत्र है। पदक्रम मे सभी पदो का ध्यान रखा जाता है किन्तु प्रधानता कर्म और क्रिया की ही होती है, जैसे हिन्दी का पदक्रम है—कर्ता + कर्म + क्रिया—'वह पत्र लिखता है', 'सीता पानी पीती है।' इन दोनों वाक्यो में क्रमश कर्ता कर्म और क्रिया का प्रयोग है। इसके प्रतिकूल अंग्रेजी मे कर्ता के बाद क्रिया आती है और फिर कर्म अर्थात् कर्ता + क्रिया + कर्म, जैसे—'He Writes the letter. Sita drinks water.'

अनुवाद करते समय पदक्रम पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। He the letter writes हो जाने पर पूरा वाक्य निरर्थक हो जाएगा। संस्कृत मे क्रम का कोई कठोर बंधन नही है। 'वह पुस्तक पढता है' का अनुवाद वहां—

'सः पुस्तकं पठति'

'पुस्तकं सः पठति'

'पठति सः पुस्तकं'

'पठति पुस्तकं सः'

—इन सभी ढंगो से हो सकता है।

इसी प्रकार हिन्दी मे कहते है : 'हम, तुम और वह जाएंगे।' अंग्रेजी के पदक्रम मे इसे कहेंगे : You, he and I shall go.' पदक्रम बदल जाने से कभी-कभी अर्थ बदल जाता है। 'He is reading the book' को 'Is he reading the book' के क्रम मे रख देने से प्रश्नवाचक वाक्य बन गया। हिन्दी मे वाक्य है—

'तुम नहीं चलोगे'

'तुम चलोगे नहीं'

यहा पदक्रम मे यह परिवर्तन बल देने की इच्छा से किया गया है इसी

प्रकार—

'मैंने दूध पिया'

'दूध मैने पिया'

इसी प्रकार अंग्रेजी मे—

'She is beautiful, no doubt'.

'Beautiful she is, no doubt'.

कविता मे छन्द के पदक्रम को बदल देने से नया अर्थ पैदा होता है—

'देखे मैने वे शैल शृंग' को यदि लिखे 'मैंने वे शैल शृंग देखे हैं' तो स्पष्ट हो जाएगा कि पहली पंक्ति मे जो विशेष अर्थ लक्ष्य किया गया है वह दूसरी पंक्ति मे समाप्त हो गया ।

(14) **कारक चिह्न**—अन्य व्याकरणिक कोटियों के समान कारक सम्बन्धी धारणा भी सभी भाषाओ मे एकरूप नही है। अंग्रेजी मे दो कारक है, लैटिन और जर्मन मे पांच, संस्कृत मे सात और हिन्दी में सात । अनुवाद करते समय कभी-कभी कारक चिह्नो मे भी परिवर्तन किया जाता है, जैसे—

मैं तुम से दोपहर को मिलूगी ।'

I shall meet you at noon

इसी प्रकार—

write in red ink.

लाल स्याही से लिखो ।

(15) **कर्त्ता तथा कर्म की व्यापकता**—संस्कृत के कर्त्ता और कर्म जितने प्रबल कारक है उतने प्रबल कारक अन्य भाषाओं मे शायद नही है। कुछ ऐसे प्रयोग है जिनमे प्रेरणाहीन धातु का कर्त्ता प्रेरणावान बनाने पर कर्म होकर द्वितीया विभक्ति ग्रहण करता है । शेष स्थलो मे अनुक्त रहने से तृतीया विभक्ति होती है जैसे 'वेद पठति' या 'वेद पाठ्यति' हिन्दी मे हो जाएगा 'वेद पढता है', 'वेद पढ़ाता है' । अंग्रेजी मे जहां प्रेरणात्मक बनने पर धातु बदलती है वहां तो यही प्रक्रिया है किन्तु अधिकाशतया प्रेरणार्थकता को दो क्रिया शब्दों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है—'Shyam makes the boy drink milk' या 'Makes him sleep' हिन्दी में इसका अनुवाद होगा 'श्याम लडके को दूध पिलाता है,' या 'उसे सुलाता है ।' हिन्दी मे यह कार्य जैसे 'पिलाता' 'सुलाता एक शब्द मे ही हो जाता है । अंग्रेजी में प्रेरणात्मक क्रिया होती ही नही । इसलिए अनुवादक संस्कृत जैसी भाषा अंग्रेजी मे अनुवाद करते समय सर्वत्र 'make,' 'give' आदि लगाकर प्रेरणा का बोध करता है जैसे—He makes him speak, learn, know, win अंग्रेजी ने प्रेरणा के लिए बहुत-सी स्वतन्त्र क्रियाए निर्मित की हैं जैसे Send बुद्ध्यथक 'Teach क feed और अकर्मक seat पर इनमें feed

सदा एक ही कर्म रखता है जैसे—'Ram feeds him with sweets' परन्तु 'teach' दो कर्म लेता है—'He Teaches Gita' तथा 'Ram teaches him Gita' इसलिए कर्त्ता और कर्म का यह सूक्ष्म अंतर अनुवादक के सामने सूक्ष्म अर्थभेद की समस्या पैदा करता है।

(16) काल—अनुवाद करते समय 'काल की अवधारणा' पर ध्यान देना होगा, क्योंकि सभी भाषाओं में काल-योजना समान नहीं है। काल एक प्रकार का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य होता है—संस्कृत तथा रूसी में क्रिया के कालभेद का आधार उसका 'प्रकार' है। हिन्दी तथा अंग्रेजी के अभ्यस्त व्यक्तियो को रूसी की 'प्रकार धारणा' कठिनाई मे डाल देती है क्योंकि वहा भूत या भविष्य दोनों कालो के दो ही भेद है—पूर्ण और अपूर्ण। पर काल की अवधारणा भाषा के विकासक्रम के साथ बदलती रहती है जैसे—'वह प्रत्येक सोमवार को वहां जाता है।' इस कार्य का सम्बन्ध भूतकाल से भी है, भविष्यकाल से भी और वर्तमान काल से भी। वह प्रत्येक सोमवार को पहले भी जाता था, आज भी जाता है और जाता रहेगा। वस्तुत: 'जाता है' क्रिया यहां काल-निरपेक्ष रूप मे प्रयुक्त है। हिन्दी के 'चावल पकाता है' और 'चावल पका रहा है' दोनो का अनुवाद संस्कृत मे 'ओदन पचति' ही होगा। अंग्रेजी से हिन्दी मे अनुवाद करते समय 'I stayed there' का अनुवाद 'मैं वहां रहता था' तथा 'मै वहां रहा' दोनो ही हो सकते है। इसी तरह 'मै अभी आया' का अनुवाद 'I am just coming' होगा और 'उसने कहा कि अच्छी तरह से हू' का अनुवाद होगा He said that he was quite well' जाहिर है कि भूतकाल और वर्तमान काल यहा भाषा विशेष के प्रचलित प्रयोग के अनुसार प्रयुक्त है—

(17) वाच्य—स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा मे कथ्य को अंतरित करते समय वाक्यो के वाच्यगत अतर को विस्मृत नही किया जाना चाहिए। कर्मवाच्य के कुछ प्रयोग विलक्षण होते है और उन पर ध्यान देना आवश्यक है जैसे—'I did not take notice of the fact यहा वस्तुत क्रिया है 'take' और उसका कर्म है 'notice'। यहा इसका कर्मवाच्य यदि किया जाए 'The fact was not taken notice of तो यह वाक्य गलत हो जाएगा। सही कर्मवाच्य वाक्य होना चाहिए—'The notice of the fact was not taken by me.'

इसी प्रकार Prepositional verb पर भी अनुवाद में ध्यान दिया जाना चाहिए। जैसे एक वाक्य है—'The boy was searched for' हिन्दी मे अनुवाद होगा। 'लड़का खोजा गया', 'लडके को खोजा गया।'

अंग्रेजी मे भाववाच्य नही होता। कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य प्राय: सभी भाषाओ मे होते है और एक भाषा के वाच्य के अनुसार उसे दूसरी भाषा मे प्रस्तुत किया जा सकता है जस

संस्कृत का 'रामेण रावण. हत.'

हिन्दी मे होगा . 'राम द्वारा रावण मारा गया' या 'रावण राम द्वारा मारा गया ।'

अंग्रेजी मे होगा 'Ravna was killed by Ram.'

किन्तु यह सदैव आवश्यक नही होता कि कर्मवाच्य को कर्मवाच्य के रूप मे ही या कर्तृवाच्य को कर्तृवाच्य के रूप में ही अनूदित किया जाए, क्योकि सभी भाषाओ मे वाच्य-प्रयोग की आदत समान नहीं होती। हिन्दी में कर्मवाच्य की तुलना मे कर्तृवाच्य का प्रयोग अधिक किया जाता है। ऐसी स्थिति मे अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय यदि अंग्रेजी मे 'को' कर्मवाच्य है और हिन्दी मे कर्मवाच्य के रूप मे प्रस्तुत होने पर वह उतना प्रभावपूर्ण नही बनता जितना कि कर्तृवाच्य के रूप मे बन सकता है तो ऐसी स्थिति में वाच्य मे अतर कर दिया जाना चाहिए।

'He was laughed of by all his friends.' इसे हिन्दी में 'उसके सभी मित्रो द्वारा उस पर हसा जाना था' के स्थान पर लिखा जाना चाहिए—'उसके सभी मित्र उस पर हसते थे।' इसी प्रकार एक और वाक्य है—

'By whom was the work done ?' इसका अनुवाद 'काम किसके द्वारा किया गया ?' नहीं होगा बल्कि होगा : 'काम किसने किया ?' 'The bird was killed by the cruel boy.' 'निर्दयी लड़के ने चिडिया मार डाली'। 'Gandhi ji was respeceted by all his Countrymen.' गाधी जी के सभी देशवासी उनका सम्मान करते थे।

(18) **जोड़ना और छोड़ना**—जिस भाषा से अनुवाद किया जा रहा है उसके वाक्यो को सदैव शब्द-प्रति-शब्द लक्ष्य-भाषा मे अंतरित नहीं किया जाता। कभी-कभी उसके कथ्य को लक्ष्य-भाषा मे प्रस्तुत करते समय एकाधिक शब्द अपनी ओर से जोडना या छोडना पडता है, क्योकि भाषा प्रयोग-विधि या भाषा की प्रवृत्ति सदैव बड़ी ही महत्वपूर्ण होती है। हमारी बात नीचे दिए गए कुछ उदाहरणो से स्पष्ट हो जाएगी—

जोडना—

He travels third class

वह तीसरे दर्जे में यात्रा करता है।

Better late than never.

कभी न पहुंचने से देर पहुंचना अच्छा है।

He is my cousin.

वह मेरा चचेरा भाई है

चलती गाडी से उतरने की कोशिश मत करो।

Do not try to get down (the) runing train.

छोड़ना—

He has bought ('a') house ('over') there.

उसने वहा मकान खरीद लिया है।

वह मेरी चचेरी बहन है।

She is my cousin

('There') are twenty rooms in the inn

सराय मे बीस कमरे है।

समग्रत' कहना चाहिए कि वाक्य-रचना का भाषा-प्रवृत्तिगत एव सामाजिक-सास्कृतिक संदर्भ सदैव ही बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। उसका अर्थ इन्ही के परिप्रेक्ष्य मे सार्थक बनता है। वाक्य मे शब्दों से ज्यादा उनका अर्थ और अर्थ के भीतर से निकलने वाली ध्वनि तथा आशय महत्त्व रखते है। अत अनुवाद-प्रक्रिया मे सबसे ज्यादा जरूरी होता है सन्दर्भ। क्योकि सन्दर्भ से कटकर शब्द निरर्थक ही होता है। वाक्य मे शब्दो को विषय एव प्रसंग के सन्दर्भ मे ही देखा जाना चाहिए।

काव्यानुवाद

देश-विदेश मे काव्यानुवाद के प्रश्न को लेकर बहसे होती रही है। सक्षेप मे इन बहसो को तीन वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(क) एक बडा समूह यह मानता रहा है कि काव्य का अनुवाद हो ही नही सकता। काव्यानुवाद असम्भव कला है। उनका कहना है कि काव्यानुवाद उस सुन्दर औरत की भाति है जो सुन्दर है तो वफादार नही है और वफादार है तो सुन्दर नही है। इस रूपक-कथन का संकेतार्थ इतना ही है कि काव्यानुवाद मे सफलता प्राप्त कर पाना असम्भव होता है। इस वर्ग के समर्थक सिडनी, दाते, हम्बोल्टस, वर्जीनिया वूल्फ, क्रोचे आदि रहे है। इन सभी ने इस इतालवी कहावत का समर्थन किया है कि 'अनुवादक बडे गद्दार होते है' (Traduttori traditori)। क्रोचे ने बहुत ऊचे स्वर में घोषित किया—'अनुवाद असम्भव होता है।' (Translation is an impossibility)

(ख) दूसरे वर्ग के विचारक यह मानते है कि कविता का अनुवाद असम्भव नही है—वह कठिन अवश्य होता है। काव्यानुवाद की कठिनता को देखते हुए उसे असम्भव घोषित कर देना मानवीय क्षमताओ के प्रति अविश्वास प्रगट करना है। इस वर्ग के विद्वानो ने 'असम्भव' शब्द को लेकर आश्चर्य प्रकट किया है कि असम्भव क्या होता है? प्रयत्न करने पर मानव के लिए असम्भव कुछ नही है। प्रतिभा, बहुज्ञता और अभ्यास से काव्यानुवाद की कठिनता को हल किया जा सकता है। उस वर्ग के समर्थको मे होरेस, क्विण्टीलियन, सिसरो ड्राइडन, पोप और काडवेल आदि को रखा जा सकता है। काव्य को तत्त्व-तत्त्व अलग कर देखने वाले काडवेल ने कविता के सात लक्षण बताते हुए कहा है कि—(1) कविता लयात्मक होती है। (2) कविता का अनुवाद कठिन होता है। ध्यान देने की बात है कि मार्क्सवादी विचारक काडवेल ने काव्यानुवाद की चर्चा करते हुए यह नही कहा कि कविता का अनुवाद कठिन होता है, इसलिए वह असम्भव होता है। उनके मत का साराश यही है कि काव्यानुवाद मे बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है यही कारण है कि कहानी आदि के अनुवाद की तुलना म

काव्यानुवाद कठिन काम है।

(ग) तीसरे वर्ग के विद्वानों का विचार है कि काव्यानुवाद करने का अधिकार सभी को नही होना चाहिए। काव्य की अच्छी समझ के बिना काव्यानुवाद नही किया जा सकता। अरसिक व्यक्ति कविता का कचूमर निकालकर रख देगा किन्तु सहृदय व्यक्ति या कवि-हृदय व्यक्ति कविता से अपने को तादात्म्यीकृत करते हुए उसका काफी सही या समीपवर्ती अनुवाद कर सकता है। इस वर्ग के समर्थको में शिलर, टी०एस० इलियट, एफ०आर० लीविस आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग भी है जो यह मानता है कि कविता का मूल का-सा अनुवाद हो ही नहीं सकता। यह अन्तर सृजन की मनोभूमि और अनुवाद की मनोभूमि से उत्पन्न होता है। यही कारण है कि स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा मे 'जैसी की तैसी' पुनर्प्रस्तुति नही हो सकती। कविता का तो निकटवर्ती या सह-अनुवाद हो सकता है। किन्तु उस प्रकार के अनुवादक को अनुवाद के लिए भी काव्यानुभूति की बनावट के रेशे-रेशे को—उसकी आभ्यन्तरिकता में—रचना-प्रक्रिया के स्तर पर पकड़ने का प्रयास करना होगा एव कवि की मानसिकता मे अनुवादक की मानसिकता को काफी निकट लाना होगा। यदि अनुवादक कवि के काव्य के साथ साधारणीकृत नही होता, तो भी अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। इस प्रकार के अनर्थकारी अनुवादो की एक लम्बी परम्परा रही है। काव्य के घटिया और भद्दे अनुवादों ने ही यह कहलवाया है कि काव्यानुवाद असम्भव होता है।

अच्छा काव्यानुवाद न हो पाने का एक मनोवैज्ञानिक कारण भी है कि मूल रचना तो सर्जक की ही रहती है, चाहे अनुवादक कुछ भी करे। बेचारा अनुवादक अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाने के उपरान्त भी रचना के लिए दूसरा व्यक्ति ही रहता है। इस दृष्टि से अनुवाद असल रचना की असल नकल का प्रयास भर है। अनुवादक इस असल की असल नकल कितनी कर सकता है, केवल यही बात उसके लिए रह जाती है और फिर कभी-कभी तो समाज उसे सृजनशील कलाकार की भाति आदर भी नही देता। ऐसी स्थिति मे अनुवादक असन्तोष का शिकार हो जाता है एव पुनर्सृजन से पूरा लगाव रखता हुआ उसे भी 'दूसरे की वस्तु मानने का भाव' रखता है। कभी-कभी ऐसी स्थिति भी होती है कि अनुवादक स्वेच्छया अनुवाद करता नही, उसे अनुवाद करना पडता है। यानी किसी सस्था की योजना के तहत अथवा आर्थिक जरूरत के कारण वह अनुवाद को व्यवसाय के तौर पर ग्रहण करता है। ऐसे मे चूंकि उसे अनुवाद करना पडता है—ऐसी मन स्थिति मे सृजनवत् अनुवाद की अपेक्षा उससे करना बहुत औचित्यपूर्ण नहीं है।

हजारो वर्षों से काव्यानुवाद किए जाते रहे है। किन्तु अनुवादक मूल सृजन तक न पहुचकर अनुकर्त्ता (Imitator) या अधिक से अधिक व्याख्याकार (Inerpreter) या बहुत ही सफल अनुवाद हुआ तो पुनर्सर्जक (Re-creator) की

स्थिति तक पहुच सका है। उसका प्रमुख कारण तो यही है कि सैकड़ों अनुवादो मे दो-चार अनुवाद ही उच्चकोटि के अनुवाद होते है। शेष अनुवादो को देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि वे कितने दोषपूर्ण है और मूल रचना की मौलिक विशिष्टताओ को प्रस्तुत करने में कितने असमर्थ है। इसका कारण यह है कि कविता का अनुवाद अनुवादक से दोहरी अपेक्षा करना है एक तो मूल रचना और रचनाकार के प्रति तादात्म्य और निष्ठा की दूसरी ओर पाठक के प्रति दायित्व और निष्ठा की सृजनात्मक साहित्य का सफल अनुवाद अत्यन्त परिश्रम-साध्य होना है। पर कविता के अनुवाद मे शब्द, बिम्ब, प्रतीक, वाक्य-योजना, लय, लहजा, बलाघात, भाव-भंगिमा, पंक्ति-पंक्ति की अन्तर्योजना, अन्तर्गठन, अलंकार, छन्द या सम्पूर्ण काव्य-संरचना को लेकर कुछ अतिरिक्त मूलभूत कठिनाइया हैं, क्योंकि हर कविता का स्वभाव ही उसमें लयमान होता है तथा अपने कथ्य के अनुकूल स्वत कविता लय और रूप मे आकार ग्रहण करती है। कर्ण के कवच-कुण्डल की भाति ये कविता मे उसके साथ ही उत्पन्न होते है। इसी में काव्यानुभूति की अद्वितीयता का मर्म छिपा रहता है। लोक-हृदय की सच्ची पहचान कराने के कारण कविता अनुभूति-योग है, जिसे आचार्य शुक्ल 'भावयोग' का नाम देते है और ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का समकक्ष मानते है।

काव्य-सृजन-प्रक्रिया को दैवी प्रेरणा मानने का कारण भी यही था कि उसमे लोकोत्तर और सृजन की उदात्त मनोभूमि के विधान होते है। इसी अर्थ में काव्य सहजानुभूति है जिसकी आत्माभिव्यक्ति कवि विशिष्ट क्षणो मे करता है किन्तु काव्य-सृजन की आन्तरिक प्रक्रिया मे न तो अनुवादक जुड सकता है, न उसमे से गुजर सकता है। वह उससे तादात्म्य अवश्य स्थापित कर सकता है। इसलिए जब तक अनुवाद व्यवसाय से जुडी कला रहता है, अनुवादक की किसी आन्तरिक जरूरत का परिणाम नही होता, तब तक वह मूल काव्य-पाठ के साथ न्याय नही कर पाता।

एक ही रचना के दो-तीन अनुवाद, अनुवाद और अनुवादक की मानसिक प्रक्रिया को समझने मे सहायक होते है क्योंकि एक रचना के विभिन्न अनुवाद एक-दूसरे से भिन्न होते है। ऐसा भी होता है कि एक ही रचना के अनेक अनुवाद अनुवाद-प्रक्रिया के दौरान मूल रचना से बहुत दूर निकल जाते हैं। मूल रचना के साथ-साथ अनुवादक की मानसिक प्रक्रिया, रचनात्मक प्रतिभा, परिवेश, उसकी काव्यार्थ-बोध-शक्ति सभी कुछ काम कर रहे होते है। भिन्न-भिन्न भाषाओ की अभिव्यक्ति-शैलियो, प्रविधियो, पद्धतियों, ध्वनियो, शब्दो, वाक्यों, मुहावरो-अलंकारो, मिथकों और अर्थ-लयों को स्रोत-भाषा की प्रकृति के साथ लक्ष्य-भाषा की प्रकृति मे अन्तर होने के कारण ढालना कठिन हो जाता है इस लक्ष्य की पुष्टि मे Fitzgerald के Rubaiyat of Omar Khaiyyam से अच्छा उदाहरण और

क्या हो सकता है जिसके सभी अनुवादो पर अनुवादको का व्यक्तित्व 'हावी' हो गया है। यह बात हिन्दी मे केशवप्रसाद पाठक (रुबाइयात उमर खैयाम), मैथिलीशरण गुप्त (रुबाइयत उमर खैयाम), हरिवंशराय 'बच्चन' (खैयाम की मधुशाला), सुमित्रानन्दन पन्त (मधुज्वाल), रघुवंशलाल गुप्त (उमर खैयाम की रुबाइया) आदि के अनुवादो को देखने से स्पष्ट हो जाती है। इन सभी अनुवादो मे अनुवादक का व्यक्तित्व विशिष्टता लिये हुए मौजूद है। यहां दो प्रकार का विरोधाभास भी देखने को मिलता है—मैथिलीशरण गुप्त का अनुवाद मूल को ही चौपट कर देता है वही बच्चन जी का अनुवाद तो मूल से भी ज्यादा प्रभावशाली बन पड़ा है। बच्चन जी अपने अनुवाद मे पुनर्सर्जक है और गुप्तजी अनुकरणकर्ता मात्र। इस अनुवाद मे बच्चनजी की कवि-प्रतिभा का प्रदर्शन हुआ है। अनुवाद के दौरान कुछ जोड़ते हुए या कुछ छोड़ते हुए अपनी सृजनात्मक सम्भावनाओ को उजागर किया है।

प्राय: यह देखने को मिलता है कि जब कभी भाषा कल्पनात्मक सत्यो के लिए प्रयुक्त की जाती है—चाहे वह पद्य हो या गद्य—तब कृति निश्चित रूप से अननुवाद्य हो जाती है। कारण, शब्दों मे अनुस्यूत अर्थवत्ता को प्रतिस्थापित नही किया जा सकता। उनमे निहित अर्थ अत्यन्त सूक्ष्म होता है और उनमे एक अतिरिक्त अर्थ छिपा रहता है—यह छिपा रहने वाला अर्थ, स्वर-संगति, बलाघात, नाटकीय गति, ध्वनि-व्यवस्था आदि के माध्यम से निष्पन्न होता है। शब्द-विशेष से उत्पन्न लहजा (टोन) भी मूल भाषा-भाषी को सहज सम्प्रेषणीय होते है। अन्य भाषा-भाषी उसके शब्दार्थ को तो पकड़ता है, उसके लहजे से उत्पन्न सूक्ष्म अर्थ को इतनी आसानी मे नही पकड़ पाता। इस प्रकार अनूदित काव्यकृति किसी तैल-चित्र की सफेद-काली छाया मात्र रह जाती है क्योंकि अनुवाद करते समय काव्यानुभूति की बुनावट और बनावट के साथ ही काव्य-भाषा की बनावट और बुनावट बदल जाती है। संरचनात्मक ढाचे के बदलाव के साथ उसकी मूल से सामजस्य (Harmony) की बारीकी बहुत कम हो जाती है। जब सृजनात्मक कल्पना पूरी तरह सृजनात्मकता के क्षणो मे सक्रिय होती है, तब वह 'कथ्य' और 'कथ्यरूप' का गठन इतने प्रखर और व्यापक स्तर पर करती है कि कोई भी अनुवाद उसके समतुल्य हो ही नही सकता या हो ही नही पाता।

कृति के कथ्य मे जीवनानुभवो से सृजित अनेक बिम्ब रचनात्मकता मे रिले-मिले होते है जिन्हे अनुवाद के समय रक्षित रख पाना कठिन हो जाता है। अनुवादक अपनी मातृभाषा के दवाव से निर्वैयक्तिक होने पर भी बच नहीं पाता। प्रत्येक अनुवादक चाहे मूल के साथ उसकी संवेदना कितनी ही पूर्ण एव श्रेष्ठ क्यो न हो, जाने-अनजाने मे और सूक्ष्म रूप मे मूल से हट जाता है। यही वह बिंदु है जहा सजन और अनुवाद का पार्थक्य दूर से पता चलता है

अनुवादक को अपनी मातृभाषा की जितनी गहरी और सूक्ष्म पकड़ होगी, उतनी गहराई से वह किसी भी अन्य भाषा के लेखक की अभिव्यक्ति के लालित्य को सराहने तथा अनूदित करने में सक्षम हो सकेगा। अर्थात् अनुवादक में रचना के भीतर गहरे पैठने की समझ होनी चाहिए, जो अपनी मातृभाषा के क्लासिक्स में धसने से बनती है और जो अनुवाद के लिए निहायत जरूरी होती है। जो अनुवादक अपनी ही मातृभाषा की (या उस भाषा की जो उसके अध्ययन की प्रथम भाषा रही है) अर्थ-शक्तियों, अर्थच्छायाओं, शब्द-शक्तियों से उत्पन्न व्यंजनाओं से गहन परिचय नहीं रखता है, वह अन्य भाषाओं की गहन अर्थ-व्यंजनाओं को समझ के स्तर पर कैसे ग्रहण कर सकता है।

वर्णनात्मक साहित्य चाहे वह पद्य हो या गद्य उसका तो अच्छा अनुवाद किया जा सकता है, क्योंकि उसके मूल संरचनात्मक ढांचे का अनुवाद में ह्रास बहुत कम होता है। इसलिए उसके अनिवार्य अर्थ का अनुवाद में पतन नहीं हो पाता। उसको रोचक शैली में प्रस्तुत करना भी अपेक्षाकृत सहज होता है। यद्यपि मूल को पूर्णतया संप्रेषित करने की सीमा वहां भी रहती है। उदाहरणार्थ 'वार एण्ड पीस', 'अन्नाकैरेना' आदि के अनुवाद विश्व-भर में बहुत ज्यादा लोग पढ़ते हैं और वे पसन्द भी किए जाते हैं। फिर भी रूसी भाषाविद् यह महसूस करते हैं कि अनुवाद में एक सीमा तक रूसी संस्कृति का एक विशेष भाग छूट गया है या अनुवादक उससे अलग हट गया है या कथ्य की सांकेतिकता खो गई है, पात्रों का स्वर पतला पड़ गया है या स्वर की मूलभूत विशिष्टताएं लुप्तप्राय हो गई हैं और लेखक की शब्दावली के बलाघात, प्रसंग-संकेत की विशिष्टताओं में व्याप्त ढंग में सन्निविष्ट समस्त विभेद उभरकर नहीं आ सके हैं।

काव्यानुवाद करते समय अनुवादक को स्रोत-भाषा के छन्द में परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता होती है। अनुवादक को कई बार लगता है कि छन्द बदल देने से कविता का रूपात्मक ढांचा बदल जायेगा। किन्तु ऐसा सोचते समय वह यह नहीं समझता कि छन्द से चिपके रहने पर और भी गम्भीर गलती हो जाने की संभावना रहती है। प्रत्येक कविता में कवि का अनुभव, विचार और अनुभूति विशेष ढंग से अनुस्यूत होता है, जिसमें एक के बाद दूसरा भाव-चित्र गुथा होता है, जिससे एक अनिवार्य लय उत्पन्न होती है और वह लय एक विशिष्ट छन्द में अभिव्यक्त होती है। किन्तु किसी दूसरी भाषा में वही छन्द-बन्ध प्रयुक्त होने पर हो सकता है कि वह लय कुंठित हो जाए। अतः अनुवादक को सर्वप्रथम कविता में निहित लय और उसके आभ्यन्तरिक अवधारकों को खोजना चाहिए और अनुवाद करते समय इनसे अलग नहीं हटना चाहिए। छन्द का अर्थ है—छिपाकर रखी हुई वस्तु। अर्थात् छन्द कवि का निजी राज होता है। इसीलिए अनुवाद करते समय सबसे अधिक कठिनाई छन्द की होती है क्योंकि हर कविता के कान अलग होते हैं। उदाहरण

के लिए जर्मन, अंग्रेजी, रूसी, चेक मे बलाघात-युक्त अक्षर-विभाजन छन्द की रचना का निर्धारक है, जबकि पोलिश, स्पैनिश, फ्रैंच आदि भाषाओ मे अक्षर बलाघात निरपेक्ष होकर निर्धारक बनता है। सस्कृत मे अक्षरो का परिमापन अधिक ताकतवर है। लेकिन हिन्दी मे वर्णिक छन्द बहुत अधिक सफल नही हो पाए है। वर्णिक छन्दो मे तीन-तीन अक्षरो का पुज गति रूप में लय उत्पन्न करता है, जबकि मात्रिक छन्द मे दो यतियो के बीच मे मात्राओ का योग लय का निर्धारक बनता है।

छन्द मे नियमित से कम महत्त्व अनियमित या अप्रत्याशित का नही है, यदि इनका प्रयोग किसी उद्देश्य विशेष के लिए किए जाता है। यह बात हिन्दी की आधुनिक कविता की ओर ज्यादा ध्यान दिलाती है, जहा कविता की पूरी पक्ति और लय मे निश्चित सम्बन्ध नही है। प्राय. पूरी कविता के छन्द-विधान को अलग-अलग लय-संरचनाओ के उद्देश्यपरक क्रम-विन्यास के रूप में देखने पर अनियमित पक्तियो का काव्यार्थ पकड़ में आता है। जैसे कवि अज्ञेय की प्रख्यात कविता 'भोर-बेला' देखिए—

'हाक् ! हाक् ! हाक् !
मत सजो यह स्निग्ध सपनो का अलस सोना—
रहेगी बस एक मुट्ठी खाक !
थाक् ! थाक् ! थाक् !'

यहा काव्य भाषा मे प्रयुक्त विरामो का विशेष महत्त्व है—इनसे लय-अनुशासन तथा शैलीगत स्पष्टता का प्रकार्य हुआ है। किसी सीमा तक इन्होने संगीत तत्त्व और सम्प्रेषणीयता की भी रक्षा की है। इस प्रकार कविता मे ये विराम अलकरण न होकर अग रूप है। इस छन्द मे प्रयुक्त शब्द मनमाने आसन पर बैठे अवश्य हैं पर वे अभिप्राय विशेष में प्रसग-निर्देश तथा सामजस्य को लिये हुए है।

छन्द शब्दाभिव्यक्ति के चरण होते है। ऐसा कहने का प्रमुख कारण छन्द मे निहित लय का आधार है जो गद्य मे नहीं पद्य मे होती है और कुछ दूर तक उसका साथ देती है। इस दृष्टि से गद्य भी लय विहीन नहीं होता है। अर्थात् सम्पूर्ण भाषिक अभिव्यक्ति में लय विद्यमान रहती है। कविता मे छन्द श्रौत रूप में लय बिम्ब है। प्रत्येक भाषा की अपनी अलग शब्द-योजना होती है तो प्रत्येक भाषा का लय-प्रवाह भी अलग होता है। यही कारण है कि छन्द और लय का अनुवाद के समय लक्ष्य-भाषा मे प्राय· अतरण नही हो पाता है। एक सीमा तक छन्द की लय उस भाषा से बंधी होती है, जिसमें उसका जन्म होता है। यह जन्म-स्थान बदलते ही ध्वनि बर्थ-लय आदि मे भारी अन्तर पड़ जाता है। इसीलिए अज्ञेयजी ने छन्द को कविता की आख कहा है भाषा सुनकर काम चला लेती है पर काव्य भाषा

अपने को देखती है, देख भी लेती है। बिम्बात्मक होने के कारण काव्य-भाषा अपने को देखती है।'

कविता शब्द-विधान है। काव्य मे भाषा का सर्वाधिक सक्रिय उपयोग होता है। भाषा का प्रत्येक अवयव-वर्ण, शब्द, शब्द-विन्यास, वाक्य-विधान, अर्थ-विधान मुहावरा, विराम चिह्न आदि सभी का पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न कवि करता है। सामान्य भाषा मे वर्ण का महत्त्व चाहे नगण्य हो, पर कविता मे बहुत होता है। स्वय आनन्दवर्धन ध्वनि की व्यापकता वर्ण से प्रबन्ध तक मानते रहे है। आचार्य कुन्तक ने वर्ण से ही वक्रता की चर्चा को आगे बढ़ाया है। 'कवितावली' मे 'तुलसी मनोरञ्जन रञ्जित अञ्जन नयन सुखञ्जन जातक मे' इस पक्ति मे 'ञ' (च वर्ग के अन्तिम वर्ण) से संयुक्त ज का स्पर्श होने से नाद-सौन्दर्य मे चमत्कार उत्पन्न हुआ है। वर्ण-विन्यास वक्रता का यह समस्त सौन्दर्य दूसरी भाषा मे अनूदित करते ही समाप्त हो जाता है। शब्द-क्रम के बदलते ही पूरा स्वर-विधान टूट जाता है। वर्ण कविता के संगीत-तत्त्व का प्रधान गुण है। 'कविता क्या है' निबन्ध मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का ध्यान काव्य की वर्ण-विन्यास-वक्रता पर गया है। कविता के इस वर्ण-विन्यास का अनुवाद हो ही नही सकता, इस अर्थ मे काव्यानुवाद असम्भव होता है। वर्णों मे व्यजनो से स्वरों का महत्त्व अधिक है—काव्य-संगीत का प्राण तत्त्व स्वर है। अच्छी हिन्दी या अग्रेजी लिखना स्वर-पहचान के बोध का प्रमाण है। लघु स्वर गति को काव्य मे तीव्र करते है और दीर्घ स्वर मन्द। ऐसी स्थिति मे स्रोत-भाषा का स्वर-विधान लक्ष्य-भाषा मे ला पाना कठिन हो जाता है। यहा काव्यानुवाद की कसौटी इस बात मे निहित होती है कि अनुवादक ने लक्ष्य भाषा के नाद-सौन्दर्य और वर्ण-विन्यास वक्रता को किस हद तक परखा है और कहा तक उसका उपयोग अनुवाद मे कर सका है।

काव्य-भाषा का सवाहक है—शब्द। सामान्य भाषा के शब्दो में कवि नया अर्थ भरता है। या निरन्तर प्रयोग से भाषा के जो शब्द घिस जाते है उन्हे छोडते हुए नये शब्दों को लोक-भाषा मे से लाता है। इस अर्थ मे काव्य-भाषा की अर्थवत्ता नाद-गुण से लेकर प्रतीक-विधान तक फैली होती है। कविता मे शब्दो का घनत्व इतना बढ जाता है कि वे चिह्न न रहकर 'वस्तु के रूप' मे दृष्टिगत होने लगते है। इसीलिए कविता को 'उत्तमोत्तम शब्दो का उत्तमोत्तम क्रम-विधान' कहा गया है। परन्तु लक्ष्य-भाषा मे लाते समय पूरी सावधानी रखने के बाद भी अनुवादक को शब्द-विधान-क्रम बदलना पड जाता है और तब होता यह है कि कविता के प्राणो मे दरार पड जाती है। जैसे कालिदास का 'रघुवश' मे यह कथन—'रघो सकाशादनवाप्य कामम्।' यहा 'रघु' व्यक्ति न होकर दानवीर के प्रतीक रूप मे शब्द से व्यंजित है। अनुवादक सोच सकता है कि व्यक्ति-विशेष के अर्थ मे निश्चित भाव होने के कारण संज्ञा शब्द किसी प्रकार के विशेष भाव के अर्थ

मे प्रयुक्त नही हो सकता । पर अनुवादक को कुन्तक का यह कथन ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्तिवाचक शब्द अपने मे चमत्कार रखने के साथ सामान्यवाचक शब्दो का भी गुण रखते है और कवि उनका भी द्विविध उपयोग कर लेता है । इनमे संस्कृति का भाव-चित्र जुडा होता है।

काव्य मे भाषा की विशेषण-वक्रता का गुण भरपूर समाया होता है। परन्तु यह काव्य-गुण अनुवादक को बहुत परेशान करता है । सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति की समर्थ गति वाले कवि ज्यादा-से-ज्यादा विशेषण-वक्रता के कवि होते है । एक प्रकार से उनकी पहचान ही विशेषणो से बनती है । इसका प्रधान कारण यह है कि सज्ञा की अर्थ-सीमा अनिश्चित होती है, उसे विशेषण ही निश्चित करता है। यह विशेषण ही अनुभूति, सवेग, कल्पना, भावना आदि को प्रकाश मे लाते है । इन विशेषणो का लाक्षणिक अर्थ होता है । विशेषणो में क्रियावाचक विशेषण भाषा मे विशेष चमत्कार की सृष्टि करते है। इनका प्रमुख कार्य विशेषणपरक की क्रिया को मूर्त करना होता है। तीन प्रकार के इन विशेषणो—रूढ़, मौलिक तथा विशेषण विपर्यय—मे विशेषण-विपर्यय का विशेष महत्त्व होता है। समर्थ कवि ऐसा भी करता है कि वह विशेषणो से काम न चलाकर क्रियापदो से काम चला लेता है। स्वय राजशेखर कविता की भाषा मे क्रिया-पदो के महत्त्व को पुन -पुन घोषित करते रहे है । काव्यानुभव का सम्पूर्ण योग क्रियापदो मे ही प्रतिफलित होता है । यही कारण है कि सम्पूर्ण अनुवाद को दृष्टि मे रखने वाला अनुवादक क्रियापदो पर विशेष ध्यान केन्द्रित किए रहता है । स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा मे काव्य को लाने के लिए बढिया अनुवादक उन रूपो के प्रति आसक्ति नही रखता, जिनकी ताजगी खत्म हो गई है । काव्य-शक्ति को उजागर करने के लिए अभिव्यक्ति की विस्मृत प्रणालियों को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास वह करता है ।

काव्य-भाषा के पर्यायवाची शब्द अनुवादक की ज्ञान-राशि की कसौटी होते है । जो भाषा जितनी ही सशक्त होगी, उसमे पर्यायवाची शब्दो की उतनी ही अधिकता रहेगी। मजेदार बात इन शब्दो की यह है कि इनका वाच्यार्थ एक होता है किन्तु व्यग्यार्थ सन्दर्भ के अनुसार अलग-अलग ढग से व्यजित होता है । इसका कारण है कि ये शब्द अपनी व्युत्पत्ति, स्वभाव, स्वरूप आदि मे भिन्न-भिन्न अर्थ-सन्दर्भ रखते है। जैसे पकज (पक या कीचड से उत्पन्न) सरोज (सरोवर से उत्पन्न) आदि शब्द। पर कविता मे इनका इतना महत्त्व होता है कि ये ही पर्याय वक्रता के मूलाधार है। मध्ययुगीन भारत का दृष्टिकूट काव्य इन काव्य-चमत्कारो की अद्भुत रगशाला है । अनुवादक को इन पर्यायो के व्युत्पत्ति-सन्दर्भ, कथा-सन्दर्भ को ग्रहण करने की कोशिश करनी चाहिए जैसे कृष्ण के पर्याय मुरारी हरि गोपाल मनमोहन श्याम गिरिधर

मुरली माधव, राधा-वल्लभ आदि शब्द है—मीरा की पंक्ति है—'मेरा तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई'। तो इस पंक्ति मे 'गिरधर' कृष्ण का पर्याय मात्र न होकर एक विशेष रक्षा-बोधात्मक ब्रह्म का प्रतीक है, कथा को छिपाए हुए मिथक है। इसलिए पर्यायो को पकडने के लिए अनुवादक को उस भाषा विशेष की सास्कृतिक जडो की जानकारी अनिवार्य होती है। इस जानकारी के अभाव में ठीक अनुवाद हो ही नही सकता।

काव्यानुवाद में पारिभाषिक शब्दों के विषय में क्या नीति अपनानी चाहिए? यह प्रश्न तरह-तरह से उठाया तथा सोचा जाता रहा है। ज्ञान-विज्ञान का नाना-विध विस्तार हो जाने के कारण तमाम अनुशासनों के 'पारिभाषिक शब्द' कविता मे धडल्ले मे आ रहे है। एव आने भी चाहिए। पहले से ही दर्शन, इतिहास, गणित ज्योतिष, वैद्यक आदि के अनेक शब्द हिन्दी कविता मे बेझिझक प्रयुक्त किए जा रहे हैं। जैसे 'कामायनी' की ये पक्तिया—

कर रही लीलामय सानन्द,
महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी मे सब होते अनुरक्त॥

यहा 'महाचिति', 'उन्मीलन' आदि शैवाद्वैत दर्शन के घोर पारिभाषिक शब्द है। इन शब्दों के पर्याय चुनने मे बडी सावधानी की जरूरत है। थोडे से प्रमाद मे इनका अर्थ बदलकर अनर्थ का रूप ले लेता है। इस प्रकार के शब्दो के मामले मे भाषा के मर्मज्ञो से राय लेकर ही अनुवाद करना चाहिए। थोडी-सी भूल पदस्खलन का कारण बन जाती है।

भारतीय तथा भारतेतर विचारको का यह मत रहा है कि कविता के शब्दो मे उलट-फेर नही किया जा सकता। कवि के समक्ष 'कोई' शब्द लेने की बात नही होती, 'एकमात्र' शब्द के चुनाव का मतलब होता है। उसे 'एकमात्र' शब्द को बदल देने से कविता नही रह जाएगी, वह दूसरी कविता हो जाएगी। ऐसा भी हो सकता है कि कविता के शब्द बदलते ही काव्यात्मकता समाप्त हो जाए। जैसे बिहारी का यह दोहा—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा-नागरि सोय।
जा तन की झाई परै, स्याम हरित-दुति होय॥

इस दोहे का पूरा काव्यात्मक चमत्कार 'झाई परै', 'स्याम हरित, दुति होय' पर टिका है। इन शब्दों के स्थान पर अन्य शब्दो को नही रखा जा सकता। कवि को जो कहना अभीष्ट है, उसके लिए यहा एक ही शब्द, एक ही क्रिया और एक ही विशेषण उपयुक्त है। इसमें बिहारी के भाव या विचार को व्यक्त करने मे इन शब्दो के अतिरिक्त किन्हीं शब्दो से काम ही नही चल सकता को

प्रकट करने मे बिहारी ने एक भी फालतू शब्द का प्रयोग नही किया। अनेकार्थी अर्थ-व्यजना वाले ऐसे शब्द अनुवादक का साथ कभी नही देते। उनका तो 'भावानुवाद' ही करना पड़ता है जिसमे 'बहुत कुछ छूट' जाता है और 'बहुत कुछ' अनुवादक को 'भरना' पड़ सकता है।

काव्यानुवाद मे शब्दार्थ के प्रसंग-सकेत (Allusion) और साहचर्य (Association) का प्रश्न भी बडा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। रचना मे पौराणिक, ऐतिहासिक, व्यक्ति-घटना, प्रसग का उल्लेख 'प्रसग-सकेत' होता है—जैसे धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' मे प्रसग-सकेत इस प्रकार आया है।

'हम सबके मन मे गहरा उतर गया है युग
अश्वत्थामा है सजय है, अंधियारा है।'

इन पक्तियो मे 'अशवत्थामा' और 'संजय' ये दोनो शब्द प्रसंग-सकेत रखते है। शब्दो के साथ जो भाव लिप्त है, या रहता है, वही साहचर्य कहलाता है। 'सजय' कहते ही भारतीय सास्कारिक मन मे एक विशेष प्रकार के दिव्य दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति का उदय हो जाता है। अंग्रेजी भाषा साहित्य मे 'ब्लड' शब्द का आभिजात्य, काम-भावना आदि से अनजाने ही साहचर्य जुड़ता है। इस प्रकार 'प्रसग-संकेत' तथा 'साहचर्य' का कविता मे बडा ध्यान अनुवादक को रखना चाहिए, क्योकि इनकी जडे सांस्कृतिक परम्परा मे बहुत दूर तक फैली होती हे। इनसे अपरिचित अनुवादक इनका ठीक बोध ही नही कर पायेगा। प्रसंग-सकेत की इस कठिनाई के कारण ही इलियट की कविता 'वेस्टलैण्ड' का कोई भी अच्छा काव्यानुवाद नही हो सका है। मूल कविता की व्याख्या ही सौ या डेढ सौ पृष्ठो तक की जाती रही है।

काव्यानुवाद का एक कठिन पहलू यह भी है कि मूल कविता को लक्ष्य-भाषा में लाते ही भाषा का नाद (साउड), भाव (सेन्स), संगीत (म्यूजिक), अर्थ (मीनिंग) आदि का ग्रन्थ-बन्धन टूट जाता है क्योकि काव्य मे अर्थ शब्द के अधीन रहता है। इसी अर्थ मे काव्य को 'शब्द-विधान' कहा भी जाता रहा है।

अनुवाद की समस्या यही है कि उसे मूल के अधिकाधिक निकट होना चाहिए। यहा अनुवाद का सम्बन्ध 'अनुकरण' से हो जाता है। भिन्न समय और देश का कवि 'मूल' को अनुवाद के लिए इसलिए अपनाता है कि उसके अपने समय तथा कृति के सृजन के समय की स्थितियो मे कुछ समानता होती है और यह भी ध्यान रहता है कि अनुवाद के माध्यम से वह अपने समय को उपयुक्त कृति दे रहा है। पोप, होरेस की और जान्सन ज्यूवेनल के अनुवाद की ओर इसलिए आकृष्ट हुए है कि उन्हें लगा है कि जो कुछ होरेस और ज्यूवेनल ने कहा था, उसे एक बार फिर से कहने की आवश्यकता है। संसार-भर मे प्राचीन क्लासिक्स का अनुवाद इसी दृष्टिकोण से होता आ रहा है किन्तु अनुवाद को मूल का मात्र नही

होना चाहिए। अनुवादक को रचना के रूप की ओर समर्पित तो होना चाहिए किन्तु यह समर्पण बहुत नियन्त्रित ढग का होना चाहिए। जिस कविता का अनुवाद उसे करना है, वह उसके लिए 'गवेषणा' की वस्तु हो, कवि की अनुभूति से उसका भाव-तादात्म्य हो। उसे रचना की बनावट उसके अन्तर्सामञ्जस्य तथा वाह्य सरचना पर पूरी तरह ध्यान देना चाहिए तथा उसकी मूल सवेदना और ज्ञानात्मक शक्ति को पकडने का प्रयास करना चाहिए।

कविता रूप, रस, स्पर्श, गन्ध और ध्वनि के मूर्त्त-अमूर्त्त बिम्ब जगाती है एव मूर्त्त वस्तुओ मे एक तारतम्य होता है। इस तारतम्य मे स्पर्श सबसे स्थूल और रस सबसे सूक्ष्म है। बिम्ब मे ऐन्द्रियता की अनिवार्यता होती है और जिस कवि मे ऐन्द्रिय-बोध जितना सूक्ष्म होता है, वह उतने ही उस स्तर के सादृश्य-विधान उपस्थित करने मे समर्थ होता है। मानस तथा अतिमानस के सादृश्य-विधान प्राय: बडे जोखिम भरे होते हैं, उनके उपयोग मे थोड़ी-सी चूक होने पर कवि स्वय अपने स्तर से गिरने लगता है तथा इस प्रकार की कविताओं के अनुवाद मे कठिनता रहती है। 'ओस की बूंद' की भाति कविता अनुवादक के हाथ का स्पर्श करते ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की कविताओ के अनुवाद जब कभी हुए है, पाठको को निराश होना पड़ा है। अग्रेजी कवि कीट्स के बहुत अच्छे अनुवाद इसीलिए नही हो सके है।

कविता में प्रयुक्त विशेषण और पर्याय गठनात्मक अन्तर्योजना के अखण्ड अग होते हैं और सच्चा काव्यार्थ उन्ही मे सीधी धार-सा बहता है। इनमे कृत्रिम सरचना की जटिलता नही होती। अपनी ऋजुता और भीतरी वक्रता इनमे रहती है, जैसे निरालाजी की प्रख्यात कविता 'राम की शक्तिपूजा' को लिया जा सकता हे जिसमें ऋजुता के साथ भीतरी वक्रता विद्यमान है जो इसके विशेषणों और पर्यायो मे मौजूद है। इसके प्रतीकों और मिथकों को, विवरणो और इतिवृत्तों को अनुवाद में ठीक से पकडा जा सकता है किन्तु इस कविता के सर्वाधिक प्रभावकारी आघात विशेषणो के रूपो मे न्यस्त हैं जिन्हे कोई विदेशी अनुवादक इनके अभिप्रायपरक सन्दर्भों को पकड़े बिना ग्रहण नही कर पाएगा। इसलिए इस कविता का अनुवाद भिन्न सस्कृति वाले व्यक्ति के लिए करना लोहे के चने चबाने के समान है। जैसे 'राम की शक्तिपूजा' मे 'कमल' का बार-बार प्रयोग देखिए—

(1) 'राजीवनयन हृतलक्ष्य'
(2) 'नमित मुख सान्ध्य-कमल'
(3) 'नत सरोज मुख श्याम देश'
(4) 'इन्दीवर निन्दित लोचन'
(5) 'कमल लोचन ध्यानलग्न'

 ज्योविदस'

इस प्रकार पूरी कविता मे 'कमल का अभिप्राय विशेष-विशेष सन्दर्भो मे स्थित हे। कभी एक सौ आठ कमलो से देवीपूजा का सन्दर्भ है जिसमें आख 'इन्दीवर' है और दूसरी ओर साधना को जागरूक रखने का स्वीकृत एव समर्थ माध्यम है। लेकिन कविता मे कवि इन शब्दो की आवृत्ति कर अर्थ को चक्राकार घुमाता है। इस तरह कवि शब्द-शब्द अर्थवृत्त बनाता चलता है। अत' अनुवादक को कविता के आवृत्तिमूलक पर्यायो तथा उनसे बने अर्थगुच्छो पर ध्यान देना होगा।

रूपकात्मक (Allegorical) तथा फन्तासीपरक (Fantacy) कविताओ के शब्दो के घुमाव और उनमे निहित-विहित तनावो के व्यास कभी-कभी बडी कठिनता से बनते हैं। जैसे दातो के बीच सुराख होने से पकडी हुई चीज फिसल जाती है, वैसे ही इस प्रकार की कविताए होती है, जिन्हे कितना भी कसकर पकड़ने की कोशिश करो, ये फिसल ही जाती है एवं इनके अर्थ की अनिश्चितता पाठक हो या अनुवादक, दोनो को द्वन्द्व-ग्रस्त रखती है क्योकि ये कविताए अर्थ की अस्पष्टता, अमूर्त्तता और कोहरिलता में बहती हैं। यह सत्य है कि इन कविताओं मे एक बुनियादी यथार्थ होता हे लेकिन ठोस अर्थ प्याज के छिलके की भाति कई परते उतारने के बाद मिलता है। जब कॉलरिज की कविता 'Kubla Khan' या मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' का अनुवाद किया जाता है तो कही कुछ 'छूट जाता है' या 'कही कुछ जुड जाता है'। हर बार इनके अनुवाद मे यही समस्या सामने आएगी। वास्तव मे यह काव्यानुवाद की एक विवशता है कि इनका महीन ढाचा अनूदित नही हो सकता क्योकि इनमें एक खास ढग की तिलस्मी कला काम कर रही है, अनुवाद करते ही वह तिलस्म टूट जाता है।

काव्यानुवाद की प्रधान समस्या काव्य-भाषा के अनुवाद की समस्या है क्योकि कविता भाषा मे ही होती है। जैसे तारों मे बिजली बहती है वैसे ही कविता भाषा मे बहती है। इसलिए सम्पूर्ण काव्यानुवाद एक प्रकार का भाषानुभव है। भाषा के शब्दो में देश और काल तथा इतिहास-भूगोल-दर्शन सभी निहित रहते हैं। शब्द जीवावयव है जो अर्थ को भरता है और बहुत समय तक ढोता भी है। प्राचीन कविताओ का अनुवाद आज इसलिए कठिन पड़ता है कि उनकी भाषा बदलते ही देश और काल के साथ काव्यार्थ बदल जाता है। जब 'वाल्मीकि रामायण' और 'गीता' का अनुवाद किया जाता है, तो उनके भी शब्द-सन्दर्भ, प्रसग-निर्देश खोजने पडते हैं—'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सव'। अब यहा सस्कृत के 'युयुत्सव' का का अनुवाद हिन्दी मे 'युयुत्सव' ही रखना पड़ेगा। इस शब्द को हटाते ही समस्त सन्दर्भगत अर्थ का ढाचा 'युद्ध के लिए उत्सुक' लिखते ही डगमगा जाता है। कविता मे शब्द और शब्द के बीच में जो जगह रह जाती है, वास्तव में कविता का अर्थ वहीं जीवित होता है जिसकी पूर्ति का अनुवादक कितना ही प्रयास क्यो न करे बदलते ही पद-वाक्य-योजना यति-गति

सभी बदल जाते है। यदि कविता का काल-बोध टूट जाता है तो प्रतीक आदि वर्ण-संकरता धारण कर लेते है क्योकि पुराने प्रतीको पर नये प्रतीको-अनुभवो-संवेगो और सृजनात्मक सयोजनो की पर्ते चढ जाती है। अनुवादक नयी संरचना, नयी भाषा सब कुछ नया पैदा करता है, इसी अर्थ मे अनुवाद 'पुनर्सृजन' कहा जाता है।

कविता की भाषा-प्रयोग विधि साहित्य की अन्य विधाओं से अलग तरह की विधि है। इसदृष्टि मे सामान्य भाषा की तुलना मे काव्य-भाषा पृथक और विशिष्ट है। सामान्य भाषा के मानदण्ड काव्यभाषा पर न तो लागू हो सकते है और न होने चाहिए। शब्दों द्वारा समर्थित अनुभव कवि का निजी अनुभव होना हुआ भी निर्वैयक्तिक अनुभव होता है। सामान्य भाषा सकेत और सकेतित के बीच के स्थिर सम्बन्धो को न तो तोडती है न विचलित करती है। किन्तु काव्य-भाषा सकेत और सकेतित के बीच के स्थिर सम्बन्धो को लगातार तोडती है। ऐसा करने से एक नयी अर्थ-गर्भिता और सृजनात्मक रूप का नया प्रवर्त्तन होता है। काव्य का जो प्राणभूत व्यग्यार्थ है, वह शब्द-व्यापार की ही कला मे है। इसलिए वाच्येतर अर्थ की खोज कविता के विविध सन्दर्भो की खोज है। इसी से कलानुभव कलानुभूति के रूप मे रूपान्तरित होता है और जो वास्तविक अनुभव है वह बिम्ब ग्रहण और अर्थ-ग्रहण के अन्त सम्बन्ध संघटन का रूप ग्रहण करता है। इसलिए अच्छी कविता को हम जितनी बार पढते है उतनी ही बार उसके नये-नये अर्थ-स्तर खुलते और सूझते है। तात्पर्य यह है कि कविता के शब्दो मे अर्थो की अनन्त सम्भावनाएं निहित रहती है। कविता का अर्थ-सन्दर्भ-व्यापार सीमित न होने के कारण अनुवादक को कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योकि काव्य-भाषा मे बाहरी सूचना से अधिक ध्यान सन्देश के गठन पर होता है।

कवि के सवेदनात्मक ज्ञान को उसकी ज्ञानात्मक सवेदना लगातार तनाव मे रखती है। इसलिए ध्वनि और अर्थ के बीच, व्याकरण और शब्द-रचना के बीच, वाक्य और वाक्य-खण्ड के बीच, शब्द और उसके अवयव के बीच एक क्रमबद्धता मे बंधा तनाव रहता है। इसे हम चाहे ध्वनि नाम दे, चाहे वक्रता, चाहे रीति या गुण नाम दे या रस कह दे, एक विशिष्ट प्रकार की सौन्दर्य-कला कविता की पूरी सरचना के सन्दर्भ मे पक्ति-पक्ति से जुडी रहती है। कविता के सन्दर्भित काव्यार्थों को रक्षित रखने के लिए अनुवादक उसकी कलात्मक बनावट को पकडने का प्रयास करता है और ऐसा करने पर ही अनुवाद एक नया सस्करण या पुनर्रचना दृष्टिगत होने लगता है। उदाहरणार्थ एक जापानी कवि के निम्नांकित हाइकू का हिन्दी के दो प्रसिद्ध कवियो द्वारा किया गया अनुवाद देखिए—

The old pond

Plop

A frog jumps in

(Zenin-English Literature and Oriental Classics, Page 207.)

जापानी के इस प्रसिद्ध हाइकू का अनुवाद शमशेर बहादुर सिंह ने (हिन्दी-काव्य पिछला दशक) में इस प्रकार किया—

एक पुराना तालाब

और उछलते मेढक की आवाज

पानी के भीतर (बीच) ?

इस अनुवाद में शब्दों के बिम्बगत सन्दर्भ बिखर गए, क्योंकि स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में लाते समय 'कुछ छूट गया' और 'कुछ बढ़ा दिया गया'।

अज्ञेय ने इसी 'हाइकू' का अनुवाद इस प्रकार किया है—

'ताल पुराना'

कूदा दादुर

गुड़ुप्।'

इस अनुवाद में शब्द-साम्य, अर्थ-साम्य और ध्वनि-साम्य—तीनों का ध्यान रखा गया है। यह सब सम्भव इसलिए भी हो पाया है कि अज्ञेय शब्द की पकड़ के कवि हैं।

कवि शेली की कुछ पंक्तियाँ हैं—

Many a green island needs must be

In the deep wide sea of misery

Or the mariner worn wan and

Never thus could voyage on

अज्ञेयजी ने इन पंक्तियों का अनुवाद किया—

'कई हरे-भरे द्वीप अवश्य होंगे

व्यथा के गहरे और फैले सागर में

नहीं तो थका-हारा सामरिक

कभी ऐसे यात्रा करता न रह सकता।

यह अनुवाद मूल के अत्यधिक निकट है, उसे मूल की धुंधली छाया नहीं कहा जा सकता। मूल कविता में निहित सूक्ष्म-गहन अर्थ-व्यंजना को कवि ने काफी ठीक पकड़ा है और अपनी भाषा के मुहावरे में उन अर्थस्तरों को व्यंजित किया है। ऐसे अनुवादों से ही आशा बंधती है कि कविता का सफलता से अनुवाद हो सकता है।

स्वयं अज्ञेयजी की अनेक कविताओं का अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ है। इनमें से एक अनुवाद (भाषा, पत्रिका-सितम्बर 1972 में) 'साँप' कविता का गुजराती में रामचन्द्र देसाई ने इस प्रकार किया

हिन्दी—

साप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं,
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछू—'उत्तर दोगे ?
तब कैसे सीखा डसना—
विष कहा पाया ?

गुजराती—

साप
तु सभ्य तो थयो नथी
नगरमा बसवानु पण
फाव्यु नथी तने।
एक बात पुछू—'उत्तर दईश ?'
तो ते कई रीते शीख्यो डसवानु
विष पाम्यो क्याथी ?

भारतीय भाषा मे किया गया यह अनुवाद मूल भाषा के अर्थ-सन्दर्भ को पूरी तरह रक्षित रख पाया है।

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'एक पुष्प की अभिलाषा' का हेमन्तता देसाई द्वारा गुजराती अनुवाद देखिए जिसमे शब्द-क्रम बदल देने से कविता का तमाम प्रभाव नष्ट हो जाता है—

हिन्दी—

'चाह नही, मै सुरबाला के
गहनो मे गूथा जाऊ।
चाह नही, प्रेमी माला में
बिध प्यारी को ललचाऊं।'

गुजराती—

'सुरबालानी वेणीया
मने गुंथावानी चाह नथी
प्रेमी ओनी प्रेम पालमा
बधावानी चाह नथी भाषा)

यहां इस कविता मे कही गई प्रत्येक बात को लक्ष्य-भाषा मे प्रस्तुत कर दिया गया है। किन्तु कवि द्वारा रखे गए शब्द-क्रम मे निहित लय तथा लहजे से उत्पन्न अर्थ-वक्रता अनुवाद मे नही आ सकी है। उस कारण मे कवि जिस मूल बात पर बल देना चाहता था वह अनुवाद में खो गई है। वैसे इस कविता में सूक्ष्म-गहन संरचना या अर्थ-व्यंजना थी पर अनुवादिका उसे पूरी तरह पकड़ नही सकी है। काव्यानुभूति से सही साक्षात्कार न कर पाने का यह सीधा परिणाम है।

काव्यानुवाद की समस्या अलकारों मे भी सम्बन्धित समस्या है। अलंकार काव्य के चमत्कार के लिए ही नहीं होते, वे अभिव्यक्ति के विशेष रूप होते हे, शैली होते हे, कथनगत चमत्कार और सम्प्रेषणीयता के माध्यम होते है। इसलिए भाषा के कथन-ढग मे उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। शब्द पर आधारित अलकारो का चमत्कार शब्द-विशेष पर टिका होता है, जिसका अनुवाद करना कठिन काम होता है या हो ही नही पाता है। बिहारी का दोहा—

'कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय'—इस पंक्ति का यमक-रक्षित रखते हुए अनुवाद नही हो सकता। ऐसी स्थिति मे काव्यानुवाद न करके गद्यानुवाद ही करना चाहिए। क्योंकि कनक के समान दो अर्थ दूसरी भाषा मे मिलना आवश्यक नहीं है।

अर्थालकारो के सादृश्य-विधान पर यदि अनुवादक अपना ध्यान केन्द्रित करता है तो उसके अनुवाद मे बड़ी समस्या का सामना नही करना पड़ता। यहा भी अनुवादक को ध्यान रखना होगा कि वह मात्र अनुकर्त्ता मात्र ही नहीं है वरन उसे एक सर्जक की मनोभूमिका अदा करनी चाहिए।

आज के ससार मे जब सास्कृतिक आदान-प्रदान की भूमिका बढ़ गई है तब तो काव्यानुवाद की भूमिका और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। कविता के अनुवादक को बहुत नियमो मे बधने की बजाय कविता के अर्थ-लय और अनुभूति से तादात्म्यीकृत होते हुए उसका अनुवाद करना चाहिए। इस कविता की प्रकृति को ध्यान मे रखते हुए अनुवाद गद्य या पद्य मे करना चाहिए। इस प्रकार काव्यानुवाद असम्भव कला नही है। हा, यह तलवार की धार पर चलने वाली कठिन कला है।

नाट्यानुवाद

काव्यानुवाद की भांति नाटक का अनुवाद अत्यधिक कठिन कार्य है। दृश्य विधा होने के कारण इसमें वाणी का सक्रिय उपयोग होता है। ऐसी स्थिति मे अनुवादक को न केवल सही पर्यायो की तलाश होती है बल्कि ऐसे पर्यायो द्वारा वाक्य-विन्यास की तलाश होती है जो लक्ष्य भाषा के मौखिक रूप और नाटकीय कार्य व्यापार के अनुरूप हो। उस अनुवाद को भाषा के रूप मे प्रस्तुत करके सवाद के रूप मे प्रस्तुत करना होता है। लेकिन इस कठिनता के बावजूद नाटकानुवाद व्यापक मात्रा मे होते रहे है। प्रत्येक भाषा के अपने श्रेष्ठ अभिनेय नाटको के बावजूद अन्य भाषाओ मे नाट्यानुवाद के बिना रगमच के उत्थान की योजना पूरी नही हो पाती। रंगमच के उत्कर्ष के युग अनिवार्य रूप से अन्य भाषाओ के श्रेष्ठ नाटको के अनुवाद के युग भी होते हैं। रगमच का इतिहास भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। शायद ही ससार की कोई समृद्ध भाषा होगी जिसमे शेक्सपियर, इब्सन, शॉ, जैसे महान् नाटककारो की रचनाएं अनूदित होकर प्रस्तुत न की गई हो। नाटक दृश्य विधा है, इस कारण से नाटक के अनुवाद की समस्या काव्यानुवाद की समस्या से काफी भिन्न है। वैसे तो नाटक काव्य का ही एक भेद है और वे काव्यात्मकता से भरपूर भी होते है। कभी-कभार तो नाटक काव्यमय या कविता ही होता है। ऐसी स्थिति मे जो कठिनाई काव्यानुवाद मे होती है वही कठिनाई नाट्यानुवाद मे काफी जटिल रूप मे उपस्थित रहती है। इसके अतिरिक्त भी अन्य अनेक कठिनाइया नाट्य-विधा के अनुवाद मे उपस्थित होती है, जिन पर गम्भीरता से विचार करने की जरूरत रही है।

हिन्दी मे पिछले सौ वर्षो से लगातार सस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओ से नाटको के अनुवाद होते रहे हैं। किन्तु इनमे फिर से काफी अनुवादो को जब कोई निर्देशक अभिनय के लिए चुनता है तो स्पष्ट हो जाता है कि ये अनुवाद मूल रचना की मुख्य मौलिक विशेषताओ को हिन्दी मे प्रस्तुत करने में कितने अक्षम और अपूर्ण हैं। यह ठीक बात है कि सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद अत्यन्त ज्ञान-साध्य और परिश्रम-साध्य काय है पर नाटको के अनुवाद में अतिरिक्त मूलभूत

कठिनाइया है जिन पर प्राय अनुवादको द्वारा समुचित रूप से ध्यान नही दिया गया। वे केवल भाषान्तर या रचना के मुख्य विचारो की अभिव्यक्ति का घटिया भावानुवाद ही करते रहे।

नाटको के अनुवाद की समस्या मूल नाटक के बिम्ब को दूसरी भाषा मे उसी तरह के बिम्ब या उसके नजदीकी बिम्ब को रक्षित रखने की समस्या है किन्तु अनुवाद की यह समस्या मूल नाट्य-विधा मे ही निहित है क्योकि नाटक वर्णनात्मक कथा न होकर सवादात्मक कला है। किन्तु यह केवल सवादात्मक कला नही है—एक ऐसी सवादात्मक कला जिसमे कार्य-व्यापार की क्षिप्रता होती है और दर्शको के समक्ष अभिनय के माध्यम से जिसे मूर्त्त रूप में रूपायित किया जाता है। इस दृष्टि से जो रचना अभिनेय नही है, उनकी गणना नाटको मे नही होनी चाहिए। इस प्रकार नाटक प्रथम तो उसका रचना-कर्म कठिन एव जटिल है, दूसरे वह अभिनय जैसे अभिव्यक्ति के एक भिन्न माध्यम से वह जुड़ा है। ऐसी स्थिति मे उसका एक भाषा से दूसरी भाषा मे भाषान्तर या रूपान्तर—जिसमे मूल नाटक का अनुवाद भी मूल की भाति अभिनेय हो और मूल नाटक की सम्पूर्ण अर्थवत्ता, दृश्य-परिदृश्यो के विभिन्न आयामो को सफल नाट्य-शैली मे मूर्तित कर सकने की क्षमता भी हो—बडा ही कठिन श्रमसाध्य कार्य होता है। अत अनुवाद के लिए दो भाषाओ का अच्छा ज्ञान ही पर्याप्य नही है, रग-परम्पराओ की सम्पूर्ण पहचान और मूल नाटक से जुडी रग-परम्परा की विशिष्ट पहचान भी होनी चाहिए। इसका प्रमुख कारण यह है कि नाटक के अभिप्रेत अर्थो-सन्दर्भो और संवादात्मक ध्वनियों की अनुगूजो का एक बहुत बडा अर्थ रंग-विधान मे निहित होता है। नाट्य के कार्य-व्यापार, अभिनय-प्रकार, उनकी गतिया, बोलने के ढंग, उतार-चढाव सभी नाट्य-विधा मे ऐसे अविच्छिन्न रूप से जुडे होते है कि एक को दूसरे से अलग करते ही नाटक की अन्विति, विशेष रूप से प्रभावान्विति खण्डित हो जाती है। रग-कर्म की व्यावहारिकता का अनुवाद से गहरा सम्पर्क-सूत्र यदि जुडा नही है तो सफल नाट्यानुवाद हो ही नही सकता। नाटक के संवाद कहानी के सवादो से अपनी प्रकृति मे ही भिन्न होते है। नाट्य-सवादो का नियामक लक्ष्यार्थ और व्यग्यार्थ मे छिपा प्रतीयमान अर्थ होता है। ऐसी स्थिति मे अनुवादक को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि साहित्यिक अनुवाद कार्य से नाटक का अनुवाद कार्य एकदम भिन्न है क्योकि रगमच का व्यावहारिक अनुभव नाटक के अनुवादक के लिए पहली और अन्तिम शर्त है।

नाट्यानुवाद की प्रधान समस्याए विशिष्ट शिल्पगत समस्याए है। नाट्य-विधा मे विषयवस्तु का प्रत्येक पक्ष-कथानक, चरित्र, विचार-तत्त्व, कार्य-व्यापार, अन्तर्द्वन्द्व संघर्ष गीति-तत्त्व भाषा तत्त्व आदि सभी कुछ मक कला के

माध्यम से व्यक्त होना है। हर पात्र का व्यक्तित्व विशिष्ट शैली पर बल देता है और इन सबके विशिष्टतामूलक सन्तुलन द्वारा नाटककार अपने मूल उद्देश्य पर आधारित होता है। इसलिए नाटकों के अनुवाद में भाषा और अभिव्यक्ति की प्रयोग-धर्मिता की अपेक्षा रहती है। संस्कृत नाटककार नाटक को 'प्रयोग-विज्ञान' मानते भी रहे हैं। उसमें पात्रों का व्यक्तित्व, उनके बोलने का ढंग, विभिन्न वाक्यांशों पर बल, उसकी शब्दावली एक-दूसरे में ऐसी अभिन्नता में जुड़ी होती है और उन सबके साथ पात्र का मनोविज्ञान आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेशगत या मानसिक अवस्था, आयु, अनुभव, भावात्मक, बौद्धिक स्तर आदि की सम्प्रेषण समस्या ही नहीं होती अपितु अभिव्यक्ति के सम्पूर्ण प्रभाव की बारीक धड़कनें भी रचना में विद्यमान होती है। यही कारण है कि नाट्यानुवाद में भाषान्तरण के साथ भौगोलिक स्थानान्तरण होता है। इस भौगोलिक स्थानान्तरण को रक्षित रखने के लिए मूल नाटक के विभिन्न पात्रों की भाषा के शैलीगत सन्तुलन को प्राय भिन्न उपायों द्वारा बनाए रखना अनुवाद के लिए अपेक्षित हो जाता है क्योंकि मूल नाटक का पात्र दूसरी भाषा में आते ही यदि भिन्न अर्थ और भिन्न व्यक्तित्व धारण कर लेता है तो यह भिन्नाश्रयता अनुवाद-कार्य की सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

हिन्दी में शेक्सपियर और कालिदास के नाटकों के अनुवादों की एक बहुत बड़ी परम्परा है। अनुवाद की इस परम्परा की तीन धाराएं हैं—

(1) एक तरह के अनुवाद सरल, सपाट और शाब्दिक हैं और जिनका एक मात्र प्रयोजन शेक्सपियर या कालिदास के नाटकों को हिन्दी पाठकों के लिए उपलब्ध कराना है।

(2) इस कोटि में वे अनुवाद और रूपान्तर आते हैं जो 19वीं शताब्दी में पारसी रंगमंच के लिए तैयार किए गए थे। इन अनुवादों और रूपान्तरों में अति नाटकीय स्थितियां, षड्यन्त्रों, हत्याओं और योद्धाओं की स्थितियों को उभारा गया तथा नाटकों के काव्य-तत्त्व और उनकी अत्यन्त गहरी नाटकीयता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इन रूपान्तरों में पात्रों के नाम, स्थितियां आदि सभी कुछ बदल दिया गया या विकृत कर दिया गया। मूल के साथ इनका सम्बन्ध बहुत थोड़ा रह गया। हिन्दी में इस प्रकार के अनुवादों और रूपान्तरों की परम्परा लगभग आधी शताब्दी तक चलती रही। जैसे 'ओथेलो' का 'जयन्त', 'हैमलेट' का 'खूने नाहक' 'King Lear' का 'सफेद-खून', 'एन्टोनी एण्ड क्लियोपेट्रा' का 'काली नागिन' आदि रूपान्तरण इसी परम्परा में हैं।

(3) यह अनुवादों की वह परम्परा है जिसमें प्राय प्रतिष्ठित नाटककारों और कवियों द्वारा अनुवाद किए गए हैं। ऐसा होने के कारण कभी-कभार इनका सम्बन्ध रंगमंच और प्रदर्शन में भी जुड़ा रहा इस लहर के साथ अनुवाद व त अधिक नहीं है यद्यपि भारतीय रंगमंच में इनका बहुत है सन 964

मे जब देश मे शेक्सपियर का चतुर्थ शताब्दी समारोह मनाया गया उस समय उनकी महान् कृतियो को रगमंच के सन्दर्भ मे सार्थक बनाने के लिए साहित्य अकादमी ने भी शेक्सपियर के कुछ नाटको के अनुवाद की योजना का कार्य कराया था। किन्तु यह अनुवाद रंगमच और प्रदर्शन की परम्परा से न जुड पाने के कारण विशेष महत्त्व नही पा सके। कवि बच्चन ने 'मैकवेथ' का एक पद्यानुवाद पहले किया था। फिलहाल मैकबेथ का एक पद्यानुवाद कवि रघुवीर सहाय ने किया है। रघुवीर सहाय द्वारा 'मैकवेथ' का यह अनुवाद कवित्त छन्द को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया है। कवित्त छन्द के चयन से वह शेक्सपियर के समृद्ध काव्य की सघन ध्वनियो और अत्यन्त नाट्य-गर्भित लयबन्धो को अपने अनुवाद मे रूपान्तरित करने में काफी स्थानो पर सफल हुए है। किन्तु सफलता की यहा भी एक सीमा रही है। वैसे कवित्त छन्द की इस सफलता का उपयोग राजा लक्ष्मण सिह भी एक बार कर चुके थे। राजा साहब ने अपने अनुवाद मे छप्पय, दोहा, चौपाई, सवैया, शिखरिणी, सोरठा आदि अनेक हिन्दी छन्दो का प्रयोग किया है।

किन्तु रघुवीर सहाय 'मैकवेथ' के पद्यानुवाद में (कवित्त छन्द मे) वर्णो के गुम्फन और ध्वनिपरक लय-बन्धो को निर्मित करते है। ऐसा करने से नाट्य-उत्तेजना और नाट्य-गाम्भीर्य पैदा होता है। इस प्रकार नाट्य-स्थितियो को रक्षित रखने का रघुवीर सहाय ने पूरा प्रयास किया है। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि इससे शब्द-समूहों और लयबन्धो का ऐसा घनत्व है जो शेक्सपियर की त्रासदी की नाट्य-शक्ति को सम्प्रेषित करता है और साथ ही पात्रो और स्थितियो के अनुकूल भाषा के मुहावरे और उसकी सरचना मे बड़ी विविधता लाता है। इस प्रकार भाषा नाटकीय तेवर मे गहरा सरोकार स्थापित करती है। रघुवीर सहाय स्वय अपनी कविताओ के नाटकीय पाठ को सन् 1974 में रगमण्डल के अभिनेताओ द्वारा अभिनीत करा चुके थे। इसलिए नाटकीय पाठ के अनुवाद का नाट्य-रूपान्तर कैसे तैयार किया जाता है, इसका अनुभव उनके पास मौजूद था।

नाटक के अनुवादक को नाटक के सम्पादन और अभ्यास की पूरी प्रक्रिया मे निर्देशक और अभिनेताओ से सम्बद्ध रहना चाहिए ताकि वह अपने अनुवाद की मूल कमियो को समझकर परिष्करण दे सके। हिन्दी मे यूनानी त्रासदियो और आधुनिक पश्चिमी नाटको के अनुवाद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने पिछले तीन-चार दशको से बहुत बड़ी सख्या मे कराए है। किन्तु उन अनुवादो को देखकर लगता है कि ये अनुवाद रचनात्मक दायित्वो के साथ नही किए गए। उनका आलेख इस कारण कमजोर रहा है कि रंगमच और प्रदर्शन की परम्परा मे वे अपना सही चित्र ही निर्मित नही कर सके। यह कहना आज भी ठीक लगता है कि रगमच और प्रदर्शन से बहुत गहराई मे न जुडने के कारण हिन्दी मे सस्कृत के नाटको के भी अच्छे अनुवाद उपस्थित नही हो सके अभिज्ञान

के तो अनेक अनुवाद हुए है किन्तु कालिदास की काव्यात्मक और व्यजनाधर्मी नाट्यकला अधिकाश हिन्दी आलेखों मे दम तोडती रही है। जबकि विदेशी अनुवादकों मे यह गहरी चिन्ता रही है कि वे प्रदर्शन की नई-नई शैलियों की खोज करें और शेक्सपियर के नाट्यानुवाद के लिए लन्दन के नेशनल थिएटर ने इस प्रकार के अनुवादको की खोज करते हुए इस कार्य को रचनात्मक दायित्व से जोडा है।

अनुवादक की सबसे बडी समस्या अपनी भाषा के मुहावरे पर अच्छे अधिकार की रही है। अपनी भाषा का बुनियादी ज्ञान न होने पर अनुवादक दूसरी भाषा से अनुवाद मे पीठ फेरकर खडा हुआ व्यक्ति दिखाई देता है। सबसे जटिल समस्या बोलियो के अनुवाद की है, जैसे अग्रेजी शब्दो का और बहुत से तद्भव आचलिक शब्दो का प्रयोग। कन्नड के नाटककार कैलाशम अपने नाटको मे पचास-साठ प्रतिशत अग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के नाटकों के लिए प्रश्न उठता है कि क्या इन नाटको का अनुवाद करते समय अग्रेजी शब्दो या वाक्यो को बिल्कुल वैसा का वैसा ही बना रहने दिया जाए? क्योंकि मूल नाटक की रक्षा-दृष्टि से तो यही उचित होगा किन्तु अभिनेयता या भाषा की रवानी की दृष्टि से सदैव ऐसा करना शायद ही बेहतर होगा।

अमेरिकी नाटकों मे स्थानीय बोलियो (Dialects) का प्रयोग प्राय होता है। उनके अनुवाद मे लक्ष्य-भाषा की किसी बोली का प्रयोग होना चाहिए। मान लीजिए, उनका अनुवाद हिन्दी मे किया जा रहा है तो क्या हिन्दी की किसी भी बोली का प्रयोग होना चाहिए और यदि होता है तो किसका? क्योंकि हमारे महानगरो मे बोलियो मे सवाद बोलने वाले अभिनेता कम मिलते हैं और यदि अभिनेता बोली बोल भी ले तो दर्शकों पर सम्प्रेषणीयता की क्या स्थिति होगी क्योंकि आचलिक शब्दो की वाक्य-योजना मे शब्द-परिवर्तन से ही अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

नाटकीय सवादो का ध्वनि-संयोजन, भाषा के उच्चारण का अपना संगीत और अर्थ-भावव्यजना—तीनो की रक्षा का प्रश्न अनुवादक के सामने पुन उठता है। उसके प्रति अनुवादक का संवेदनशील होना बहुत आवश्यक है। अनुवाद की भाषा मे ध्वनियो और नाद में, स्वराघात और व्यंजन-ध्वनियो की योजना मे विविधता, सुसगतता और उतार-चढाव होना अनिवार्य हैं, नही तो नाटक रगमच पर जाकर असफल हो जाएगा। इसलिए अनुवादक को ध्वनिमूलक सम्भावनाओ से परिचित होना चाहिए।

नाट्यानुवाद का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है वातावरण की सृष्टि। इस परिवेश की रक्षा पात्रो के सवादो मे अवश्य होनी चाहिए। शेक्सपियर की त्रासदियो मे नियति का आतकपूर्ण सवाद-योजना में पूरी तरह गुंथा हुआ है यदि

अनुवादक यह प्रभाव उत्पन्न न कर सका तो नाटकीय सौन्दर्य मे बड़ी बाधा पडेगी। नए नाटककारो मे सार्त्र और ब्रेख्त में तो वातावरण एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप मे विद्यमान रहता है। वे नाटक अनुवादक के लिए आज भी बड़ी चुनौती है।

देशकाल की सम्पूर्ण भावमयता और नाटकीय वातावरण का निर्माण दृश्य-परक उपकरणो और प्रकाश-योजना से होता है। अनेक बार अनुवाद मे व्यंग्य और हास्य के भाषान्तरण की कठिनाई का कोई सही समाधान नही मिल पाता। इसलिए प्रहसनों और कामदियो का अनुवाद करना सर्वाधिक टेढी खीर है। क्योकि उनके सवाद इतने व्यजना-प्रधान होते है कि उनके समानधर्मी बिम्ब और पर्याय खोजते-खोजते अनुवादक थक जाता है तब भी अनुवाद भावानुवाद से अधिक कुछ नहीं रहता।

विदेशी काव्य-नाटको के अनुवाद मे स्वर-सगीत, वाक्य-विन्यास, पद-रचना, छन्द-विधान, बिम्ब-योजना और परिवेश की समस्या प्रधान रूप मे आती है। इलियट के 'Murder in the Cathedral' की सम्पूर्ण नाटकीयता एवं काव्यात्मकता दोनो को सुरक्षित रखते हुए अनुवाद कैसे किया जाए? स्थितिगत कठिनता के कारण अंग्रेजी के काव्य-नाटको का पद्यानुवाद हिन्दी मे अभी तक होने की स्थिति ही नहीं आ पायी है, क्योंकि अभिव्यक्तिगत भगिमाएं अनुवादक का साथ नही देती है। संस्कृत नाटको के अनुवाद का सौभाग्य या दुर्भाग्य यह रहा है कि वे अधिकतर उन शास्त्रीयतावादी मानसिकता मे जकडे पण्डितो द्वारा किए जाते रहे है, जिनका रगकर्मियो से कोई सम्पर्क नही रहा। सस्कृत का पर्याप्त ज्ञान होने पर भी गद्य या पद्य की सहज गति का उनमे अभाव रहा है। इन अनुवादों की सबसे बडी कठिनाई है, सस्कृत नाट्य-साहित्य की बिम्ब-बहुल, प्रतीक-बहुल, सगीत-बहुल, समास-बहुल, अलंकार-बहुल भाषा जिसे काव्यात्मक और कल्पनामूलक गद्य मे ढालना सिद्धहस्त कवि और गद्यकार के वश की बात ही हो सकती है। भारतेंदु, राजा लक्ष्मण सिह सत्यनारायण 'कविरत्न' आदि के अनुवाद तथा मोहन राकेश द्वारा 'मृच्छकटिक' का उल्लेखनीय अनुवाद इसी दिशा-दृष्टि से सपन्न है।

अग्रेजी से होने वाले अनुवादो मे उर्दूदां भाषा का चलन रगमच पर काफी रहा है। पारसी रगमच से लेकर अब तक यह प्रवृत्ति काफी देखने को मिलती है। आधुनिक अनुवादकों मे यह झुकाव सवभतया भाषा के चलते मुहावरो की तलाश का परिणाम है। इस झुकाव ने कभी-कभी बड़े ही रोचक अनुवाद भी प्रदान किए है जैसे अमृतराय द्वारा 'हैमलेट' का अनुवाद।

नाट्य भाषा मे लोकोक्तियो और मुहावरों के व्यापक प्रयोग की प्रवृत्ति भी भाषा मे जीवतता लाने की इच्छा का परिणाम है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयो का अनुवाद

मानव और विज्ञान का सम्बन्ध बहुत पुराना है। किसी भी वस्तु का विशेष ज्ञान प्राप्त करने की स्पृहा मानव मन मे आदिम काल से रही है। वैज्ञानिक ज्ञान को स्पष्ट और तथ्यात्मक रूप देने की दृष्टि से मनुष्य ने उसकी शब्दावली को ठोस, मूर्त्त एव सरल बनाकर प्रस्तुत किया है। वैज्ञानिक उपलब्धियो का मानव के लिए विशेष महत्त्व है। आरम्भ मे मनुष्य ने धातु-शोधन, औषधि और शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी अनुसधान किए और उस ज्ञान को सकेत-चिह्नो के माध्यम से लिपिबद्ध किया। इस तरह वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण किया। आज की वैज्ञानिक प्रगति के युग मे विभिन्न देशो के वैज्ञानिक अनुसधानो से आज की जीवन और तत्काल परिचय रखने के लिए विज्ञान एव टेक्नोलॉजी का अनुवाद नितात आवश्यक है। जो देश जितना अधिक प्रगतिशील है वह उतनी ही शीघ्रता एव तत्परता से इस कार्य मे लगा है।

साहित्यिक अनुवाद का सम्बन्ध जहा विशेष रूप से भाषा की सरचना (Structure) एवं रूप (Form) से होता है वहा वैज्ञानिक एव तकनीकी विषयो का अनुवाद प्रमुख रूप से विषय-वस्तु (Content) पर आधृत होता है। साहित्यिक अनुवाद के सौन्दर्यानुभूतिपरक महत्त्व की तुलना वैज्ञानिक एव तकनीकी विषयो के अनुवाद के व्यावहारिक एव तथ्यात्मक लक्ष्यो से की जा सकती है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद करते समय किसी भी विषयगत सूचना को एक भाषा से दूसरी भाषा में अतरित करते समय अनुवादक का ध्यान यथार्थता एव परिशुद्धता पर सर्वाधिक केन्द्रित होता है। यदि अनुवादक मूल कथ्यो से हट जाता है तो उसकी यह गलती कदापि क्षम्य नहीं हो सकती। दूसरी ओर साहित्य के अनुवादक को कुछ अश तक स्वतंत्रता होती है कि उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता आदि का अनुवाद करते समय वह मौलिक कल्पना का सहारा ले ले। भाषातर करते समय उसे रूपातर की छूट होती है।

साहित्यिक अनुवादक किसी हद तक यह कह सकता है कि तकनीकी विषय के अनुवादक को भाषा के साथ वैसा श्रम नहीं करना पड़ता जैसा कि साहित्य के

अनुवादक को करना पडता है। इस तरह वैज्ञानिक और तकनीकी विषयो का अनुवाद साहित्य के अनुवाद की तुलना मे अपेक्षाकृत सरल प्रक्रिया है जिसके लिए अनुवादक को विषय विशेष की शब्दावली का ज्ञान होना मात्र पर्याप्त है। किन्तु यह बात तकनीकी या वैज्ञानिक विषयो के अनुवाद पर बहुत थोड़ी सीमा तक ही लागू हो सकती है। अत इस बात को अपने आप मे अन्तिम समझ लेना भारी भूल होगी। किसी वैज्ञानिक अनुसधान की जटिल विकास-प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत करने वाले किसी लेख या उद्योग सम्बन्धी नवीन तकनीकी कार्य के आरम्भ करने के सम्बन्ध मे किसी लेख (जिसमे उस तकनीकी विशेष की प्रक्रिया को प्रस्तुत करने के लिए व्यापक तर्क प्रस्तुत किए गए हो) का अनुवाद करने के लिए भाषा पर वैसा ही सहज और समृद्ध अधिकार अपेक्षित होगा जैसा कि किसी अच्छी साहित्यिक कृति के अनुवाद के लिए अपेक्षित है। इसके विपरीत ऐसी अनेक साहित्यिक कृतिया होती है जिनमे विधि, युद्ध, खेलकूद, जैविकी आदि अनेक विषयो को लिया जाता है। ऐसी कृतियों का अनुवाद उन विशेष विषयो की जानकारी के बिना सम्भव नही होता।

यह तथ्य अब स्वीकार किया जाने लगा है कि प्रत्येक प्रकार का अनुवाद—चाहे वह साहित्यिक हो अथवा वैज्ञानिक या तकनीकी—विशेष प्रकार के मानदण्डो द्वारा नियंत्रित होता है तथा वे मानदण्ड मूल पाठ के स्वरूप एव प्रकार पर आधारित होते है तथा कोई भी मानदण्ड इतने जड एवं स्थिर नही होते कि उनमे कोई परिवर्तन ही सम्भव न हो। इसके विपरीत ये मानदण्ड गत्यात्मक होते है जिनमे परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन किया जा सकता है।

यूनानी वैज्ञानिको ने गणित, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र आदि के क्षेत्र मे आरम्भ से ही काम किया और आरम्भकाल से ही वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माणकार्य होता रहा। गणितज्ञ यूक्लिड ने अपनी 'Element of Geometry' नामक पुस्तक से अनेक पारिभाषिक शब्दो को ठोस और मूर्त रूप मे प्रयुक्त किया। स्वय अरस्तू इनसे पूर्व जीव-विज्ञान, भौतिक-शास्त्र, गणित और विज्ञान के अन्य क्षेत्रो की शब्दावली गढ़ते रहे थे। इस भाषा मे लक्षणा तथा व्यंजना लाने का प्रयास आदर का नही, निन्दा का अधिकारी बनता है। पुराने जमाने मे वैज्ञानिक साहित्य भारत, अरब, यूरोप आदि देशों मे पद्य मे लिखा जाता था। चिकित्सा आदि पर मध्यकाल से लिखे गए छन्दोबद्ध ग्रन्थ मिलने है। छन्द को याद रखने मे सुविधा होती थी। किन्तु इसका अर्थ वहा भी साहित्यिक छन्द नही था। आधुनिक वैज्ञानिको ने इस व्यर्थ की छन्दबद्धता पर प्रहार किए और रॉयल सोसाइटी की यह बात मान ली गई कि वैज्ञानिक अनुवाद की भाषा स्पष्ट एव तार्किक गद्य मे होनी चाहिए। आज के वैज्ञानिको ने विकास-परम्परा मे यह बात गाठ बाध ली है कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद की भाषा सहज सरल तथा

अभिधाप्रधान होनी चाहिए।

वैज्ञानिक विषयो के अनुवादक को साहित्यकार की भांति शब्दो को तौलने के चक्कर में पडने की आवश्यकता नही है। हा, उसे दृढता के साथ केवल वे ही शब्द चुनने चाहिए जिनका पारिभाषिक अर्थ सुनिश्चित हो और जिनका अर्थ-सदर्भ किसी भी स्थिति में तथ्य से दूर न जा पडे। इसलिए पूरे अनुवाद मे एक निश्चित शब्दावली तार्किक वैज्ञानिकता के लिए अपनाई जानी चाहिए। प्रतीक चिह्नो को भी उनके सुनिश्चित रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए जिससे कि स्रोत-भाषा मे निहित अर्थ लक्ष्य-भाषा मे प्रस्तुत होने पर समझने मे देर न लगे। यदि कोई नया प्रतीक चिह्न है तो विशेष टिप्पणी द्वारा उसे स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए।

इस अनुवाद मे साहित्यिक अनुवाद की भांति कुछ छोड़ने या कुछ जोडने की गुजाइश नही होती, क्योंकि सच्चा अनुवादक इसमें छोड़ने या जोडने की बात को छोडकर कथ्य को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ अभिधा में अनूदित करता चलता है। इसी अर्थ में यह सम्पूर्ण अनुवाद है। क्योंकि स्रोत-भाषा का सम्पूर्ण कथ्य लक्ष्य-भाषा में सम्पूर्णता से लाया जाता है।

यह समझकर चलना चाहिए कि वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद इन विषयो का जानकार व्यक्ति आसानी से कर सकता है। जैसे-जैसे विश्व मे वैज्ञानिक जानकारी के प्रति आदर बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे अनुवाद कार्य भी प्रगति कर रहा है। लैटिन, अंग्रेजी, जर्मन, रूसी, जापानी आदि भाषाओ मे ज्ञान के साहित्य (Literature of knowledge) का बहुत अनुवाद हुआ है और हो रहा है। लम्बे अरसे तक दासता में जकडे रहने के कारण भारतवर्ष मे वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति बडी देर से आरम्भ हो सकी जिसका सीधा परिणाम यह हुआ कि भारतीय भाषाओ मे वैज्ञानिक अनुवाद का कार्य अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ। किन्तु आज स्थिति वैसी नहीं रही है और यह कार्य बहुत अधिक गति से किया जा रहा है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद सूचना प्रधान होता है। अत शैली की कलात्मकता यहां वाछित नही होती। लेकिन स्वच्छता जरूर अपेक्षित होती है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति-प्रधान साहित्य की तुलना मे वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद कोई समस्या उत्पन्न नही करता। अतः अनुवादक को शैली की सजावट पर ध्यान केन्द्रित न करके वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य के पारिभाषिक शब्दो की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

यह संयोग की बात है कि विश्व की अधिकाश समृद्ध भाषाओ मे पारिभाषिक शब्दों का अभाव नही है। इसका प्रधान कारण केवल यही है कि इन भाषाओ मे वैज्ञानिक साहित्य की समृद्ध परम्परा विद्यमान है। ऐसे देश आरम्भ से ही जिन नवीन वस्तुओ और को उत्पन्न करते रहे हैं उनके लिए साथ ही साथ शब्द भी गढते रहे हैं इस प्रकार की शब्दावली का एक निश्चित प्रयोग आधुनिक

काल तक लगातार हुआ। इसलिए परम्परागत विज्ञान और नवीन वैज्ञानिक अनुसधानो के सदर्भ मे ये भाषाएं पारिभाषिक शब्दो की दृष्टि से समर्थ और सम्पन्न रही। ऐसी स्थिति मे पारिभाषिक शब्दावली की कोई बडी समस्या इन भाषाओ के सामने कभी खडी नही हुई। इन भाषाओं का अनुवादक विषय की भीतरी जानकारी प्राप्त करता हुआ अनुवाद के क्षेत्र मे आगे बढता रहा।

भारतीय भाषाओं मे विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली का अभाव विज्ञान की सपन्न परपरा के अभाव मे निहित है। पश्चिम मे आधुनिक विज्ञान का जिस ढग से विकास हुआ वैसा हमारे यहा नही हुआ। यद्यपि प्राचीन काल मे भारत मे विज्ञान का समृद्ध विकास हुआ था और भौतिक शास्त्र, खगोल विज्ञान गणित आदि की शब्दावली सस्कृत में विकसित हुई थी। लेकिन आधुनिक विज्ञान का क्षेत्र पश्चिम ही रहा है। उनके यहा एक-एक विषय की अनेक शाखाएं-उपशाखाए फैली और बढ़ी है। उन विषयो का इतना विकास हो गया और उनकी शब्दावली बहुत व्यापक हो गई। इस विज्ञान से हमारा परिचय अग्रेजी के माध्यम से ही हुआ और शिक्षा की भाषा भी अग्रेजी होने के कारण इस क्षेत्र मे लेखन बहुत कम हुआ। परिणामस्वरूप भारतीय भाषाओ मे वैज्ञानिक शब्दावली का अपेक्षित विकास नही हुआ। हा, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना के पश्चात् इस दिशा मे फलप्रद प्रयास हुए है। अब अनुवाद करते समय इस शब्दावली का इस्तेमाल अपेक्षित है। इस दिशा मे यह माना गया है कि वैज्ञानिक और तकनीकी विषयो का अनुवाद करते समय स्रोत-भाषा के पारिभाषिक शब्दो के समकक्ष शब्द यदि लक्ष्य-भाषा मे न मिले तो अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार उनका अनुकूलन कर लिया जाए। अन्य भाषाओं के शब्दो को अपनी भाषा में ग्रहण करने मे हिचकना नही चाहिए। इतने से भी पूर्ति न हो तो अपनी भाषा की धातुओ, उपसर्गो, प्रत्ययो के आधार पर नवीन शब्द नि.सकोच निर्मित करने चाहिए।

अनुवादक को वैज्ञानिक या तकनीकी साहित्य के विषय-विशेष का जितना गहन और सूक्ष्म ज्ञान होगा, अनुवाद-कर्म उसके लिए उतना ही सहज रहेगा। विषय के ज्ञान के अभाव मे भयंकर तथ्यात्मक भूले होने की सम्भावना रहती है।

लोकोक्तियों तथा मुहावरों का अनुवाद

लोकोक्तिया और मुहावरे समाज के लिए सामूहिक अनुभव की ठोस अभिव्यक्ति होते है। इसलिए डच भाषा मे कहावत को 'दिन-प्रतिदिन के अनुभव की पुत्री' कहा गया है। इनमें मानव जाति के सम्पूर्ण अनुभवों का निचोड़ मौजूद रहता है। इसलिए ये भाषा मे लवणवत् माने गए है। अरबी लोग इन्हे शब्दों का दीपक कहते है। कवि टेनीसन ने कहा है—"ये वे रत्न है जो काल की खुली तर्जनी पर सदा चमकते रहते है।" इस प्रकार पुरखो के अनुभव भरे वचन और जनसाधारण की उक्तिया लोकोक्ति अथवा मुहावरे के माध्यम से जीवित रहते है। लोकोक्तिया तथा मुहावरे भाषा को जितना अधिक प्रभावशाली बनाते है, अनुवाद करते समय वे उतने ही प्राणलेवा सिद्ध होते है।

सर्वप्रथम तो लोकोक्ति तथा मुहावरे का अन्तर समझना अनुवादक के लिए बहुत जरूरी शर्त है। लोकोक्ति मे एक पूर्ण सत्य या विचार की पूरी अभिव्यक्ति होती है। वह दूसरे वाक्य मे अश नही बनती, अपितु एक स्वतन्त्र वाक्य होती है। मुहावरा स्वतन्त्र वाक्य नही होता। वह किसी वाक्य मे रखे जाने का सहारा खोजता है। उदाहरणार्थ—'ठण्डा लोहा गर्म लोहे को काटता है' एक लोकोक्ति है तथा 'टेढी खीर', 'दात खट्टे करना' आदि मुहावरे है। कहावते और मुहावरे प्राय. किसी अनुभव-सिद्ध कहानी का सार होते है। इनके माध्यम से की गई अभिव्यक्ति लोक-जीवन और लोक-चेतना की ज्यादा गहरी पकड़ मे युक्त होती है। इसलिए उसकी लाक्षणिकता और व्यंजकता अपने मे अर्थ गर्भत्व की एक बहुत बडी उपलब्धि को संचित किए होती है। लोक-जीवन की अनेक स्थितिया लोकोक्ति से ही व्यजित होती है। लोकानुभव की कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरने के बाद ही कोई कथन लोकोक्ति बनता है। ऐसी स्थिति मे इसका अनुवाद एक बडी चुनौती का रूप होता है।

लोकोक्तियो और मुहावरो को स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा मे अन्तरित करते समय का प्रयास होता है मूल के समानार्थकों की दोनों भाषाओ में खोज करना

लोकोक्तियों का अनुवाद

लोकोक्तियो मे सास्कृतिक-ऐतिहासिक संदर्भ का पूरा लोक-रहस्य अतर्निहित होता है, इसलिए उनके अभिव्यजक शब्द विशिष्ट-विशिष्ट अर्थ-संदर्भो के वाहक होते है। वे सामान्य भाषा की सरल उक्तिया नही होती, बल्कि लोकानुभव की ऐसी ध्वन्यर्थमयी उक्तिया होती हैं जिनका अनुवाद बडा ही कठिन पडता है। उनमे सम्पूर्ण लोक-जीवन रचा-बसा रहता है। अनुवादक प्रत्येक देश के लोक-जीवन की और भाषा की भीतरी से भीतरी पकड सहजता से नही कर सकता। अत भापा मे इनकी अभिव्यक्तियो पर अधिकारपूर्वक अनुवाद करना असम्भव तो नही, किन्तु बडा ही जटिल कार्य होता है। एक व्यक्ति तीन-चार भाषाओ पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। किन्तु आज के युग में सभी भापाओ पर अधिकार होने का दावा हास्यास्पद ही प्रतीत होगा।

एक ही देश की लोकोक्तिया प्रादेशिक सस्कृति के रंग लिये होती है और उन स्थानीय रगो (Local Colours) मे निहित अर्थच्छायाओ, सूक्ष्म बारीकियो को पकड़ने मे उस देश के अन्य भागो के लोगों को भी कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति मे दूसरे देश और सस्कृति के लोगो के लिए उन्हे पकड पाना तो बहुत बडी बात है। भारतवर्ष मे विभिन्न भाषाओ और बोलियों की कहावते अलग-अलग ढग की शैलियो और पद्धतियो की हैं। उनमें समानता के बावजूद काफी असमानता है। भौगोलिक-सामाजिक, आर्थिक स्थितिया, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास, आचार-विचार, जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, शिक्षा-दीक्षा आदि सभी का भीतरी प्रभाव उन पर तैर रहा है। पजाबी की कहावत है 'नालायक पुत्तर दा बस्ता भारी'। अब हिंदी मे इसे 'नालायक बेटे का बस्ता भारी' कहते है तब इसमे कुछ औपचारिकता-सी दिखाई देने लगती है लेकिन जब कहते है कि 'नालायक पूत का बस्ता भारी', तो 'पूत' शब्द में जो बोलीगत सहायता मिलती है वह पजाबी पुत्तर के पर्याप्त निकट लगती है क्योकि उसमे एक ठेठ देसीपन का बोध होता ह।

हर भाषा की लोकोक्तिया, नवीन उपमाओ और नवीन भावो की निजता मे एक विशिष्ट ढग की प्रतिभा का सकेत देती है। अत लोकोक्तियो का अनुवाद करते समय दोनो भाषाओ के स्रोतों को भलीभाति समझ लेना चाहिए। शब्दश: अनुवाद करने का प्रयास अधिकतर असफल हो जाता है। मूल कहावत के अलकार और तुकबन्दीगत आग्रहो को ज्यों का त्यो दूसरी भाषा मे लाने मे अनुवाद असमर्थ रहता है। उदाहरणार्थ हिन्दी की कहावत है—

'टके की बुढिया, नौ टका सिर मुडाई'

इसका तुकबन्दीगत अनुवाद हुआ

uarter worth verry and three quarters to carry

यहा 'Verry' और 'Carry' की तुकबन्दी ठीक बैठी है और अनुवाद भी मूल के काफी नजदीक है। लेकिन ऐसा प्राय नही होता। अनुप्रास के साथ प्रायः सुन्दर अनुवाद नही हो पाता क्योकि लोकोक्ति अनुस्यूत दृष्टात काफी गडबड करता है। भारतीय कहावतें प्राय. कुटुम्ब-पद्धति तथा पाप-पुण्य के सम्बन्ध मे समान विचार रखने के कारण भावो मे समानता रखती है अत भारतीय भाषाओं की लोकोक्तियो का हिन्दी अनुवाद उतनी कठिन समस्या नही खडी करता जितनी कि विदेशी भाषाओं की लोकोक्तियो का। इसी तरह भारतीय धारणाओ और विधियो को अंग्रेजी में अनूदित करना कठिन हो जाता है।

प्रादेशिक भाषाए एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती है। किसी स्थिति विशेष मे एक देश का प्रभाव दूसरे देश पर पडता है। इस तरह से लोकोक्तियो का आदान-प्रदान बिना रोक-टोक के होता रहता है। अनेक बार इनमे इतनी समानता होती है कि उनका अनुवाद काफी सुविधा से हो जाता है। शब्दानुवाद यदि न भी हो पाए तो अत्यन्त सहज सन्निकट भावानुवाद हो जाता है। उदाहरणार्थ—'Barking dogs soldom bite'

हिन्दी मे इसी से मिलती-जुलती कहावत है—

'जो गरजते हैं वे बरसते नही'

किन्तु गुजराती मे बिल्कुल अंग्रेजी जैसी ही कहावत मिल जाती है—

'भसतो कूतरो करडतो नथी'

लोकोक्तियो के अनुवाद में एक कठिनाई यह भी आती है कि अनुवादक का प्राय साथ देने वाला कोश—उसका साथ बहुत देर तक नही दे पाता। शब्दकोश मे लोकोक्तिया प्राय. नही होती और होती भी है तो इतनी कम होती है कि उनसे अनुवादक का काम नही सधता। द्विभाषिक, त्रिभाषिक लोकोक्ति कोश बनाने की वही कठिनाई है जो इनके अनुवाद मे सामने आती है क्योकि थोडे-बहुत शब्द समानार्थी मिल पाते है और अधिकतर भिन्नार्थी। अतः लोकोक्तियो की पूरी अर्थ-व्यंजना एक भाषा से दूसरी भाषा मे भगीरथ प्रयास करने पर भी अर्थ-गगा नही बहा पाती।

स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा मे लोकोक्तियो का व्याख्यात्मक अनुवाद (Interpretative translation) हो सकता है। सही अनुवाद के लिए स्रोत-भाषा के अर्थ को पकडते हुए लक्ष्य-भाषा मे उस अर्थ को रक्षित रखना जरूरी होता है इस प्रक्रिया को अपनाने से अनुवाद मे अर्थ और भाव की पूरी रक्षा हो जैसे हिन्दी की कहावत है—'तवा हाडी को काली बताए'। इसका अंग्रेजी मे कई तरह से अनुवाद हो सकता है—

i The pan calls the pot black

ii The Kettle calls the pot black

(iii) 'The frying pan says to the pan'—'Abount brows'

(iv) 'The sooty oven mocks the black chimney.'

(v) 'The kiln calls the oven burnt house.'

(vi) 'The chimney sweeper bids the collier wash his faee'

इस प्रकार यदि अनुवादक कहावत का अर्थ पकड लेता है तो उसे अनुवाद में कई तरह से प्रस्तुत कर सकता है जिसमें शब्दो को बदलने पर भी अर्थ सुरक्षित रहता है। कभी-कभी ऐसी लोकोक्ति होती है जो ऐसा बिखराव लिये होती है कि लक्ष्य-भाषा मे उसे सूत्रबद्ध करना पडता है और यदि उसे सूत्रबद्ध न किया जाए तो अर्थ ही खो जाता है—'बछिया घर में रही तब तक सुहागन, पर बिक गई तब अभागिन।' इसके समकक्ष कई कहावतें हो सकती है—

(i) 'The crow thinks her own bird fairest.'

(ii) 'Every potter praises his own pot, and more if it is broken.'

(iii) 'Each priest praises his own relics.'

किंतु ऐसी कहावतों का यदि शब्दानुवाद कर दिया जाए तो सूत्रबद्धता चाहे न आए किन्तु अर्थ रक्षित रहता है—

'The hefer was auspicious so long as it was with us, when it was sold out to others it became inauspicious'

इस बिखरी कहावत का अर्थ व्यजित करने वाली एक अन्य कहावत हिन्दी मे ही मौजूद है—

'हर कुम्हारन अपने ही मटके सराहती है।'

इस प्रकार स्रोत-भाषा की लोकोक्ति खण्डित हुए बिना लक्ष्य-भाषा में उतर आती है। किन्तु 'On the horns of a dilemma' को 'साप के मुह में छछूदर, निगले तो अधा, उगले तो कोढ़ी' अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमे समानार्थी खो गए है और अंग्रेजी की उपरोक्त कहावत से अधिक गहरी अर्थव्यजना हिन्दी की यह कहावत प्रस्तुत नही कर रही है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दो भाषाओं की लोकोक्तियों मे विचार समान होते है किन्तु उनका प्रभाव समान नही होता। जैसे—'A little pot is soon hot' से मिलती-जुलती कहावत है . 'अधजल गगरी छलकत जाय' या 'क्षुद्र नदी बढि चलि इतरानी'। इन कहावतों में विचार-साम्य होने के बावजूद प्रभाव साम्य नहीं है।

स्रोत-भाषा की लोकोक्ति के समान अर्थ वाली लोकोक्ति लक्ष्य भाषा मे खोजी जानी चाहिए प्रयास करने पर यह कार्य कठिन नहीं होता जैसे सस्कृत

की कहावत है—

संस्कृत—शिष्यापराधे गुरोर्दण्ड.।

हिन्दी—शिष्य के अपराध के लिए गुरु को दण्ड।

अंग्रेजी—For the fault of a pupil the teacher has been punished

ऐसी समान आशय की लोकोक्तिया भी होती हैं जो लगभग सभी भाषाओ में नही तो अनेक भाषाओं में मिल जाती है—

हिन्दी—'एक तो करेला दूसरे नीम चढा।'

पजाबी—'इक करेला दूजा निम चढ्या।'

गुजराती—'कारेला ने वली नीम पर चढा।'

उर्दू—'एक तो मिया दीवाने ऊपर से खाई भाग।'

अंग्रेजी—'Already a mad cowherd and moreover she had swallowed the garlic.'

समग्रत कहा जा सकता है कि अनुवादक का प्रयास यह होना चाहिए कि लोकोक्ति का मूल आशय नष्ट न हो।

मुहावरों का अनुवाद

बहुत से मुहावरे ऐतिहासिक-पौराणिक कथाओ पर आधारित होते हैं जैसे —'द्रौपदी का चीर होना', 'बीरबल की खिचड़ी होना', 'सुदामा के तदुल', 'राम-बाण औषधि', 'शबरी के बेर' आदि। कुछ ऐसे भी मुहावरे होते हैं जो लोकानुभव को विशिष्ट ढग से सकेलित करते है। अत्यधिक प्रभावशाली ध्वनिपरक योजना के कारण मुहावरो का अनुवाद बडा ही कठिन काम है। इसलिए अनुवादक को स्रोत-भाषा मे से किसी मुहावरे को लक्ष्य-भाषा मे लाते समय शब्दार्थ की समानता पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। चूकि मनुष्य स्वभाव एक है, भिन्न दिखाई देता हुआ भी वह भिन्न नही है, अत: अनेकता मे एकता की खोज का सिद्धान्त यहा हमारी समस्या का सही समाधान होता है। हर भाषा की प्रवृत्ति और प्रयोग, शक्ति अलग होने से मुहावरा अलग ढंग की शैली और अर्थव्यजना ग्रहण कर लेता है। इसलिए उसका एक अलग ढग का शब्द-बिम्ब और फिर शब्द-बिम्ब से अर्थ-बिम्ब बनता है। अत. अनेक भाषाओ के मुहावरों मे तुलनात्मक समानता की खोज करने का प्रयास होना चाहिए। असमानताओ को जल्दी से टाल नही देना चाहिए अपितु उन पर बहुत थमकर विचार करना चाहिए। ऐसा करने से नई सूझबूझ पैदा होती है और मुहावरा अपना अर्थ व्यक्त करने लगता है। हिन्दी तथा अग्रेजी मे अनेक मुहावरे ऐसे हैं जिनकी दर्शनीय है

अलादीन का चिराग Alladin s lamp

लालफीता शाही--Red tapısm.

लुढकना लोटा—A rollıng stone.

झगड़े की जड—An apple of discord.

हवाई किला बनाना—To make castle ın the air

एक ही थैली के चट्टे-बट्टे होना—Bırds of the same feather.

Man ın thousand—हजारों मे एक।

To blow one's own trumpet—अपने मुह मियां मिट्ठू बनना।

A cıy ın wilderness—अरण्यरोदन।

Crocodile tears—मगरमच्छी आंसू।

To burm one's finger—हाथ डालते ही उंगली जलना।

A long face—चेहरा उतरना।

To strıke the ıron whıle ıt ıs hot—गर्म लोहे पर चोट करना।

To poke one's nose ın other affaırs—दूसरे के काम मे टाग अडाना।

To keep ın the dark—अंधेरे मे रखना।

To throw trump card—तुरप चाल चलना।

To put one's head ın the lıon's mouth—जबरदस्त के हाथ मे गर्दन देना।

To leave no stone unturned—कोई कसर न रखना।

To be at daggeis drawn—कुत्ता-बिल्ली-सा वैर होना।

To be true to one's salt—नमक हलाल होना।

To bell the cat—बिल्ली के गले मे घंटी बाधना।

To cast the pearls before a swıne—भैस के आगे बीन बजाना।

To have a thıng at one's finger tıps—उगलियो पर गिन रखना।

To throw dust ın a person's eye—आखो मे धूल झोंकना।

To make mountaın of a mole hıll—राई का पहाड बनाना।

To nıp in the bud—पैदा होते ही गला घोंट देना।

कुछ ऐसे मुहावरे भी हैं जिन्हे लक्ष्य-भाषा मे सीधे अंतरित नही किया जा सकता। शब्दो के हेर-फेर से अर्थ अभिव्यक्त किया जा सकता है। जैसे 'Achılles heel' का अर्थ होता है किसी व्यक्ति की परिस्थितियो या व्यक्तित्व का कोई कमजोर अंश। यह मुहावरा सास्कृतिक सदर्भो से जुडा है अत दूसरी भाषा मे इसका अनुवाद नही हो पाता। जब तक सास्कृतिक सदर्भो के स्रोतो तक नही पहुचा जाएगा तब तक सही अर्थ पकड़ना सम्भव नही है। इसी तरह हिन्दी मुहावरे 'शबरी के बेर' का अर्थ उसके परिप्रेक्ष्य मे ही समझा जा सकता है

यदि स्रोत भाषा के मुहावरे के शब्द और अर्थ की दृष्टि से समान मुहावरा

लक्ष्य-भाषा मे नही मिलता तो ऐसी स्थिति मे अभिप्रेत अर्थ को ध्यान मे रखते हुए भावानुवाद कर दिया जाना चाहिए, उदाहरणार्थ 'A close fisted man' के समानांतर कोई मुहावरा नही सूझता तो इसका अभिप्रेत अर्थ लेकर इसका अनुवाद 'कजूस व्यक्ति' या 'मक्खीचूस व्यक्ति' किया जा सकता है। ऐसे अवसर पर लक्ष्य-भाषा की मूल प्रकृति का ध्यान रखना चाहिए। स्थिति विशेष में नया मुहावरा भी बनाया जा सकता है जैसे 'broken heart' के लिए 'भग्न हृदय' बना लिया गया। 'Herculean effort' का अनुवाद 'हरक्यूलियन प्रयत्न' की बजाय 'भगीरथ प्रयास' करने से यह हिन्दी की प्रवृत्ति एव भाषिक सहजता के अधिक निकट बैठता है।

यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि स्रोत-भाषा मे लक्ष्य-भाषा मे जाते समय मुहावरा कही भिन्नार्थक या हास्यास्पद स्थिति तो ग्रहण नही कर लेता। व्यजना प्रधान मुहावरे का अभिधापरक अनुवाद करना भारी भूल होगी। 'White elephant' का अनुवाद 'सफेद हाथी' कर देना बहुत उपयुक्त नही है क्योकि वस्तुत 'white elephant' का अर्थ होता है 'हानिप्रद स्वत्व' और हिन्दी मे इस अर्थ मे प्रचलित मुहावरा है 'महगा सौदा'। इस सम्बन्ध मे अनुवादक के लिए विशेष सतर्कता एव सावधानी नितात आवश्यक है।

हर भाषा का भूगोल, इतिहास और अर्थशास्त्र अलग होने मे अभिव्यक्ति भी उसकी निजी हो जाती है। अत. अनुवादक को सदैव शब्दानुवाद न करके जहा अपेक्षित हो वहा भावानुवाद करना चाहिए। 'To give a cordial welcome' का अर्थ है हार्दिक स्वागत करना। किन्तु हिन्दी के मुहावरे के माध्यम से इसका भावानुवाद भी किया जा सकता है—'पलक पावडे बिछाना' या 'आखो के गलीचे डाल देना' इस प्रकार मुहावरो का अनुवाद शब्द-प्रतिशब्द न करते हुए सम्पूर्ण मुहावरे को भाषिक इकाई के रूप में रखकर किया जाना चाहिए।

यदि स्रोत भाषा के मुहावरे का सही अर्थ शीघ्र ही पकड मे नही आता और अनुवादक जल्दी में उसका शब्दानुवाद कर बैठता है तो अर्थ के अस्पष्ट होने की सम्भावना रहती है। ऊपर 'white elephant' के लिए 'सफेद हाथी' पर्याय का उदाहरण ऐसी ही जल्दबाजी का परिणाम है। ऐसी स्थिति मे स्रोत-भाषा के अनुभवी और जानकार व्यक्तियो की सहायता लेना बेहतर होगा।

निष्कर्ष यह है कि लोकोक्तियो तथा मुहावरो के अनुवाद मे स्रोत-भाषा के मुख्यार्थ और शब्द-सदर्भ पर ध्यान केन्द्रित रखने से अनुवादक भारी गलतियो मे बच सकता है।

अनुवाद की समस्याएं

अनुवाद की समस्या पर किए गए सभी अध्ययन यह स्वीकार करते है कि अनुवादक को पाठगत सामग्री के भाषा और भाव को समझकर उसे लक्ष्य-भाषा मे अन्तरित करना होता है। किन्तु यह इतना सरल कार्य नही है जितना ऊपर से दृष्टिगत होता है। इस कार्य की अपनी भीतरी कठिनाइयां हैं, जिन्हे व्यावहारिकता के धरातल पर समझा जा सकता है।

प्रत्येक देश और काल की विशेष सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितिया होती है जो काल-विशेष के सृजन-कर्म मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हे। अनुवाद किए जाने पर स्रोत-भाषा की ये परिस्थितिया लक्ष्य-भाषा के लिए कभी-कभी एकदम नयी, अजनबी और चुनौती भरी होती है। ऐसी स्थिति मे समानार्थक शब्दो को सही सन्दर्भो मे खोजना और उनमे वही अर्थवत्ता निश्चित करना जो स्रोत-भाषा मे विद्यमान रही है, अपने आप में बडी समस्या बन जाती है।

स्रोत-भाषा के शब्दो, वाक्य-विन्यास के विशेष लहजे की विशिष्टतापरक अभिव्यंजकता के समकक्ष लक्ष्य-भाषा में प्राय उपलब्ध न हो पाने की स्थिति मे अनुवादक को बड़ी छटपटाहट महसूस होती हे। उदाहरण के लिए अनुवाद मे एक वाक्य आता है—'हाल ही मे खुले सेवाश्रम मे अभिनव ने लगभग पन्द्रह दिन पहले ही काम शुरू किया था।' यहा 'सेवाश्रम' ऐसा शब्द है जिसके लिए अंग्रेजी मे अनुवाद समकक्ष खोजना कठिन है। यह मूलत. संस्कृत का शब्द है, आधुनिक सन्दर्भ मे इसका अर्थ होगा—'समाज सेवा-केन्द्र'। आश्रम शब्द प्राचीन भारतीय सभ्यता-सस्कृति से जुडा है। यदि इस शब्द के लिए 'A centre for social service' लिखते है, तो 'सेवाश्रम' शब्द मे निहित सम्पूर्ण अर्थगर्भी व्यंजना और शब्द मे भरा हुआ गाधीवादी अर्थ दूर पड जाएगा जिससे इस शब्द का सन्दर्भ जुडा है। 'आत्मानुशासन', 'संयम', 'अहिसा' आदि सभी इसी से जुडे अर्थ-सन्दर्भ है— अर्थ-सन्दर्भ से हटाते ही यह शब्द भटक जायेगा। अत अनुवाद करते समय 'सेवाश्रम' का 'लिप्यन्तरण' ही बेहतर होगा। इससे अनुवाद मे एक ˜ रंग का प्रवेश होगा किन्तु प्रश्न यह उठेगा कि भारतीय पाठक या गाधीवाद से परिचित

पाठक तो 'सेवाश्रम' का अर्थ समझ लेगा, किन्तु विदेशी भाषा और संस्कृति के ऐसे पाठक, जो इस शब्द-सन्दर्भ से परिचित नही हैं, को इसे समझने में कठिनाई होगी। इसी स्थिति मे या तो 'सेवाश्रम' को समझाने के लिए अलग से विशिष्टार्थक टिप्पणी दी जाए या शब्दगत सन्दर्भ को कोष्ठक मे खोलकर रखा जाए।

अनुवादक को स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा की गम्भीर जानकारी के लिए दोनो भाषाओं मे जुड़ी संस्कृति की व्यापक जानकारी होगी तभी वह दोनो भाषाओ के सास्कृतिक सन्दर्भो को सही परिप्रेक्ष्य मे पकड़ सकेगा। साथ ही सही सन्दर्भो मे दोनो भाषाओ के तुलनात्मक अध्ययन से ठीक शब्द को ग्रहण कर सकेगा।

कभी-कभी ऐसा होता है कि अनुवादक के समक्ष जो समस्या खडी होती है, वह सास्कृतिक अननुवाद्यता की होती है। स्रोत-भाषा पाठ मे मौजूद परिस्थितिगत तत्त्व लक्ष्य-भाषा से सम्पृक्त संस्कृति मे बिलकुल अनुपस्थित होता है। जैसे परम्परागत भारतीय घरो का शब्द—'चौका'। इसे अंग्रेजी शब्द 'Kitchen' के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। क्योकि दोनो मे भिन्न-भिन्न संस्कृतियो के भिन्न-भिन्न अर्थ विद्यमान है। भारतीय शब्द 'चौका' या 'रसोई' मे 'भोजन पकाने की शुद्धता और पारिवारिकता का अर्थ विद्यमान है तथा यह शब्द भारतीय गृहिणी के समस्त त्याग-सौजन्य की अतर्मान-सिकता से जुडा है। यदि हम किसी कहानी या कविता मे 'कन्नौजी चौका' शब्द का प्रयोग करते है, तो विदेशी के लिए इसकी अर्थ-व्यंजना खोज पाना कठिन पड़ेगा। क्योकि वहा चौका उनके 'सम्पूर्ण छुआछूत पाखण्ड' का प्रतीक है जैसे—

आठ कन्नौजिया, तेरह चूल्हे
तहू फिरै ऊले ऊले ॥

इसके लिए Kitchen अनुवाद किया जायेगा तो वाछित अर्थ ही नही आ पाएगा। क्योकि वहा 'किचिन' घर से अलग केवल भोजन पकाने की जगह है और यहा 'चौका' घर के भीतर सम्पूर्ण रसायन से भरा शब्द है।

सास्कृतिक अननुवाद्यता की सर्वाधिक बडी कठिनाई यह है कि जब कभी स्रोत-भाषा के किसी अननुवाद्य शब्द के लिए लक्ष्य-भाषा मे सन्निकट शब्द को रख देने पर लक्ष्य-भाषा का वाक्य-विन्यास अटपटा और असामान्य-सा हो जाता तब लक्ष्य-भाषा स्रोत-भाषा को सोख जाती है। दूसरे शब्दो मे इस बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सास्कृतिक अननुवाद्यता वास्तव मे वाक्य-विन्यासगत अननुवाद्यता होती है। यहा पर लक्ष्य-भाषा मे स्रोत-भाषा के समकक्ष खोजने की होती है अत उसे एक प्रकार की भाषिक अननुवाद्यता भी कहा जा सकता है जापानी भाषा का एक शब्द है यूकाता यह यूकाता

एक ढीला-ढाला वस्त्र होता है, जिसे वहा स्त्री-पुरुष दोनो ही पहनते है और जापान के होटलो या सरायो मे ठहरने वाले व्यक्तियो को होटल की ओर से दिया जाता है। यह एक ऐसा वस्त्र है जो घर-बाहर, सोने-तैरने से लेकर सभी कामो मे पहन लिया जाता है। अगर इसका अग्रेजी मे अनुवाद किया जाए तो समस्या यह आती है कि अग्रेजी मे अलग-अलग समयो पर पहने जाने वाले वस्त्रो के नाम अलग-अलग है—जैसे 'ड्रेसिंग गाउन', 'बाथरोब', 'हाउसकोट', 'पिजामा', 'नाइटगाउन' आदि। यहाँ दिक्कत यह होगी कि जापानी शब्द 'यूकाता' के लिए कौन-सा अग्रेजी शब्द रखा जाए। जापानी मे एक वाक्य आता है—'वह होटल मे मिला यूकाता पहने था' तो अंग्रेजी मे लिखेगे—'He was wearing hotel dressing gown' या 'Hotel Bath Robe' यह वाक्य अग्रेजी मे अर्थ-सम्भाविता की दृष्टि मे बडा अटपटा और कमजोर दृष्टिगत होगा। यह समस्या सास्कृतिक दृष्टि से भिन्नताबाली भाषाओं मे सर्वाधिक होती है किन्तु जो भाषाए सास्कृतिक दृष्टि से समानता रखती है जैसे हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि, उन भाषाओ मे यह समस्या प्राय नही होती है।

अनुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की दो प्रकार की संरचनाए होती है—सास्कृतिक सरचना और भाषिक सरचना। दोनो ही सरचनाए एक दूसरे को प्रभावित करती है। यदि भाषा को लिखित या मौलिक घटनाओ की एक शृखला कहा जाए जो अर्थ-वहन करती है, तो अनुवाद की समस्या स्रोत-भाषा की घटनाओ और लक्ष्य-भाषा की घटनाओ के बीच अर्थ-समकक्षों पर पहुचने की होगी। इस प्रक्रिया मे अनुवादक को दो आधारभूत सरचनाओ—भाषिक और सास्कृतिक—पर कार्य करना पडता है।

भाषिक अननुवाद्यता विशेष रूप से उन स्थानो पर आती है, जब स्रोत-भाषा मे रूपकात्मक, मिथिकल और आलंकारिक प्रयोगो की भरमार हो जाती है। ऐसी स्थिति मे लक्ष्य-भाषा मे उनके समकक्षो का खोजना टेडी खीर हो जाता है। लेकिन यह समस्या मूलत साहित्यिक अनुवाद (उसमे भी नाटक तथा काव्य के अनुवाद) की समस्या है। स्रोत-भाषा मे श्लिष्ट, रूपकात्मक-आलकारिक प्रयोगो की भरमार के कारण प्राय लक्ष्य-भाषा मे अनुवाद अस्पष्ट होकर अर्थ की अमूर्तता की ओर बढ जाता है। उदाहरण के लिए 'सुबरन को खोजत फिरत, कवि, व्यभिचारी, चोर', जैसी काव्य-पंक्तियो को लिया जा सकता है। इस काव्य-पक्ति मे 'सुबरन' का अनुवाद-शब्द श्लेष के कारण चक्कर मे डालता है। दूसरी भाषा मे इसका अनुवाद करते ही कवि के अर्थ और अभिप्रेत का सम्पूर्ण चमत्कार ठण्डा हो जाता है।

इसी प्रकार की समस्या अनेकार्थी वाक्यो या शब्दो के आने पर उत्पन्न होती

है। स्रोत-भाषा के इन अनेकार्थियो को लक्ष्य-भाषा के मूल सन्दर्भ मे लाकर ढालना कठिन होता है जैसे 'रस' शब्द की घोर पारिभाषिकता अनुवाद के लिए चुनौती पूर्ण है। भारतीय काव्य-शास्त्र के अतिरिक्त भी इस शब्द का प्रयोग आयुर्वेद का रस, पद्रार्थ का रस आदि अनेक रूपों मे होता है। सामान्य भाषा मे भी रस शब्द पाक-रस आदि के लिए खूब चलता है। ऐसा ही एक शब्द है 'धर्म'। जिसका पर्याय केवल 'Religion' नही होता। यह शब्द 'कर्त्तव्य' तथा 'मानवीयता' के अर्थ मे ज्यादातर प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार वर्ड्सवर्थ की एक प्रख्यात पक्ति को लिया जा सकता है—'The child is father of the Man' इस वाक्य मे इतने अर्थ-सन्दर्भ गर्भित हैं कि इसका अनुवाद हो ही नही पात—'बच्चा आदमी का पिता है' कहते ही इस शब्द की दार्शनिकता, अर्थक्षमता आदि सब कुछ समाप्तप्राय होने लगती है। मूल पक्ति जितनी अपने मे बृहत्तर अर्थ-अनुषंगो को रखने के कारण व्यापक दिखाई देती है उसका अनुवाद उतना ही 'छोटा' और 'सीमित' अर्थवाला दृष्टिगत होने लगता है।

मिथक प्रत्येक देश मे एक खास ढग मे उत्पन्न होते रहते है, किसी भी जाति का जातीय अवचेतन इन्ही मे युगों-युगो तक यात्रारत रहता है। देशबद्ध इन मिथको का अनुवाद बहुत कठिन काम है। इसका प्रधान कारण यही है कि मिथक का एक विशिष्टतावाची लोक-सन्दर्भ होता है जैसे मीराबाई के काव्य में 'गिरधर' का प्रयोग। उनकी पक्ति है—'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।' मीरा की इस पक्ति का अग्रेजी भाषा मे अनुवाद करते समय 'गिरधर' को लिप्यंतरित भी कर लिया जाए तो पूरे अर्थ का वहन नही हो सकता क्योंकि शब्दो के पर्याय एक-से नही होते है, हर पर्याय का अलग अर्थ-सन्दर्भ होता है। 'गिरधर' के पर्याय 'नन्दनन्दन', 'वासुदेव', 'मुरारी', 'राधा-वल्लभ', 'मुरली मनोहर', 'गोविन्द' आदि नही है, न वे अनुवाद मे सहायता ही दे सकते हैं। 'गिरधर' मे इन्द्र-कृष्ण सघर्ष का सम्पूर्ण मिथ निहित है। इन्द्र को हराकर कृष्ण ने ब्रजवासियो की रक्षा की और अपना लोक-रक्षक रूप जनता में स्थापित किया। हर दुर्बल-असहाय व्यक्ति के लिए विपत्ति के समय मे यह भगवान का 'रक्षक' रूप है। विपत्तिग्रस्त मीरा की रक्षा 'गिरधर' ही कर सकता है—'मुरली मनोहर' या 'कुज-बिहारी' नही। ऐसी स्थिति मे 'गिरधर' जैसे मिथिकल-सन्दर्भो के अनुवाद में अनुवादक के गहन ज्ञान और पकड की परीक्षा हो जाती है। ऐसे मे टिप्पणी देने के सिवाय कोई चारा नही रहता। गहराई से सोचे तो यह समस्या देश-विदेश के साहित्यिक अनुवाद की सर्वाधिक प्रधान समस्या है। अतः अनुवादक को ऐतिहासिक, सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य के साथ मिथिकल प्रसगो-सन्दर्भो की सही जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

अनुवाद की समस्या का एक पहलू शब्द-समुच्चय से जुडा है प्रत्येक भाष

का शब्द-समुच्चय एक विशिष्ट समुच्चय होता है। इस शब्द-समुच्चय के भीतर अनेक उपसमुच्चय होते है। इन उपसमुच्चयों का निर्धारण सम्बन्ध भाषा की सरचना में उन शब्दो की स्थिति तथा प्रकार्य के आधार पर किया जाता है। अतएव एक भाषा के शब्द-समुच्चयो से जैसे उपसमुच्चय बनेंगे वैसे दूसरी भाषा के शब्द समुच्चयो से नही।

अनुवाद क्यों ?

आज विश्व-भर मे अनुवाद की आवश्यकता को तीव्रता से महसूस किया जा रहा है। विज्ञान, टेक्नालॉजी, कला-साहित्य-संस्कृति, दर्शन, राजनीति, समाज-शास्त्र, वनस्पति विज्ञान आदि ज्ञान की तमाम शाखाओ-प्रशाखाओ मे हो रहे एक देश के कार्य को दूसरे देश तक पहुंचाने मे अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अनुवाद के द्वारा एक देश अन्य देशो के विचारो, कार्यों, सास्कृतिक-राजनीतिक, सामाजिक-आर्थिक हलचलो, अनुभवो, प्रयोगो और अनुसन्धानो से तो गहन से गहनतर सम्पर्क स्थापित करता ही है, साथ-ही-साथ सास्कृतिक सम्बन्धो को निकट लाने और बढाने मे भी सेतु का काम करता है। मानव की समस्त सास्कृतिक प्रगति, ज्ञान-माध्यमो के प्राचुर्य और संचार-साधनों में द्रुतगति के परिणामस्वरूप आज विचारो, तकनीको और महत्त्वपूर्ण समाचारों, अनुबन्धो के परस्पर विनिमय की गति भी तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। प्रतिदिन मानव नये से नये ज्ञान-क्षेत्रो के कपाट खोल रहा है। ऐसी स्थिति मे अनुवाद-कार्य की आवश्यकता और महत्ता असन्दिग्ध है।

प्रत्येक देश एवं जाति की अपनी निजी सास्कृतिक विरासत एवं जीवन-दृष्टि होती है। संघर्षों से जूझकर कमाये गए जीवन-मूल्य होते है। सास्कृतिक-ऐतिहासिक, सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक-धार्मिक, नैतिक विकास की विशिष्ट ढंग की विशिष्टताएं होती है। प्रायः इन विशिष्टताओ मे ही जाति की सम्पूर्ण अन्तर्मानसिकता निहित होती है। यह अन्तर्मानसिकता ऐतिहासिक पीठिका की अनवरतता और काल-चक्र से जुड़ी होती है। विभिन्न देशो के और कालो के भावों, विचारो, सकल्पनाओ, प्रत्ययो और कृत्यो मे मानव का सम्पूर्ण बौद्धिक एव कार्यात्मक-ज्ञानात्मक भण्डार अनुवाद के माध्यम से मुक्त विचार-विनिमय व्यापार में प्रवृत्त होता है।

मानव के पास आयु, समय और साधन की एक सीमा रहती है। हर व्यक्ति ससार की प्रत्येक भाषा नही सीख सकता। ऐसी स्थिति मे अनुवादक ही वह माध्यम है जिसके द्वारा हम सभी भाषाओ से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। युगो से अनुवादक अपना यह विशिष्ट ढग का काय करता चला आ रहा है इस प्रका

सभ्यता के विकास मे वह सृजनात्मक योगदान देता रहा है। अनुवादक के इस उदात्त एव निष्ठापूर्ण कार्य के अभाव में विभिन्न देश और संस्कृतिया किसी द्वीप से अधिक न रही होतीं, जो अपने आप में तो शायद बहुत सुन्दर होती, क्योकि अलग-अलग इकाइयो के रूप मे पडी रही होती पर उनके निवासी सम्पूर्ण विश्व से अलग-थलग पड गए होते और विस्तृत ज्ञान-क्षेत्र से उनका जीवन्त सम्पर्क कट गया होता। इसके साथ ही विस्तृत ज्ञान से वचित हो जाने के कारण वे सदैव के लिए अपनी मानसिक और भौतिक सीमाओ मे जकड़े रहकर कूपमण्डूक बन गए होते। ससार की तमाम ज्ञान-वायु फेकने वाली खिडकियां उन तक खुल ही नही पातीं। मानव का यह अपूर्ण विकास बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण हुआ होता।

आज विश्व-भर मे ज्ञान का पुराना समाजशास्त्र बड़ी तेजी से बदलाव ले रहा है। पुरानी दुनिया के स्थान पर एक नया चेहरा जन्म लेने की कोशिश कर रहा है। विज्ञान के नये अनुसन्धानों और आविष्कारो के क्षेत्र मे इस ढग के परिवर्तन इस शताब्दी मे बहुत हुए हैं। कुछ देश तो विज्ञान के क्षेत्र मे बहुत आगे बढ गए ह और शेष पिछड़ रहे है। इन पिछडे देशो मे विकसित देशो के ज्ञान-विज्ञान को फौरन पहुचाने की आवश्यकता है और यह काम अनुवादक ही सही ढग से पूरा कर सकता है या ज्ञान-विज्ञान की सम्पूर्ण जानकारी उन तक पहुचा सकता है।

गहराई से विचार करने पर यह बात स्पष्ट होने लगती है कि अनुवाद अर्जित-उपार्जित ज्ञान की निरन्तरता बनाये रखने वाला भाषा-दर्शन है। यह प्राचीन ज्ञान को नये युग मे ढोकर लाता है। इस प्रकार हम अपनी परम्परा से सीधे साक्षात्कार करते है और परम्परा के संग्रह-त्याग की विवेक-भावना को भी विकसित-परिष्कृत करते हैं। इस दृष्टि से अनुवाद परम्परा का नवीनीकरण है जिसे परम्परा की आधुनिकता का कार्य भी कहा जा सकता है।

अनुवाद-प्रक्रिया मे देश एव जाति की आत्मसजगता, स्वचेतनता एव आत्म-विस्तार का भाव निहित रहता है। एक ओर तो जो हमारे पास नही है, उसे ग्रहण करने की बलवती इच्छा रहती है और दूसरी ओर जो हमारे पास अपनी भाषा और संस्कृति मे विद्यमान है, उसे ज्यादा-से-ज्यादा दूर तक फैलाने और प्रसारित करने की आकांक्षा। उदाहरणस्वरूप यूरोप के नवजागरण काल (Reniassance) को देखा जा सकता है। नवजागरण काल मे इटली के विद्वान ग्रीक भाषा और सस्कृति की विपुल ज्ञान-राशि को श्रम से अपनी भाषा मे अनूदित करके लाए। फिर फ्रास और जर्मनी होते हुए सम्पूर्ण यूरोप में ज्ञान के प्रति उत्कट लालसा की लहर फैल गई और यूरोप के हर देश मे इटली के ज्ञान को लाने-पाने की धूम मच गई। सम्पूर्ण यूरोप मध्यकालीन अंधकार और अज्ञानता से उबरकर नये ज्ञान के प्रकाश मे दीप्त हो उठा। यूरोप मे नवजागरण काल के भीतर भी अनुवाद की बड़ी भूमिका रही है इस प्रकार आने वाली पीढियों के लाभाय पुनर्जागरण काल मे सम्पूण ग्रीक

साहित्य और ज्ञान-विज्ञान लैटिन फिर अन्य योरोपीय भाषा मे अनूदित किया गया । यही स्थिति भारतीय नवजागरण की रही है । 19वी सदी मे देश-विदेश के समस्त नए-पुराने ज्ञान-विज्ञान को आधुनिक भारतीय भाषाओ मे ले आने की बलवती स्पृहा रही है ।

हमारे आस-पास जो घटित हो चुका है, या घटित हो रहा है, उसके प्रति जागरूकता का परिणाम है—अनुवाद कार्य । हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग आधुनिकता का प्रवेश-द्वार इसलिए कहा जाता है कि भारतेन्दु बाबू ने अपने ऐतिहासिक बोध को सही दिशा-द्वार दिया और युगीन आवश्यकताओ को समझते हुए पाश्चात्य साहित्य से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। एक ओर तो वे सस्कृत नाटको के हिन्दी रूपातन्तर प्रस्तुत कर रहे थे, दूसरी ओर महान् कलाकार शेक्सपियर के नाटको के हिन्दी अनुवाद में सक्रिय रहे । परिणामस्वरूप त्रासदी'कामदी आदि नये नाट्य-रूपों से हिन्दी-साहित्य को परिचित कराया । पुराने हिन्दी काव्य-शास्त्र को झटका देकर नवीनीकरण की ओर प्रवृत्त किया । ऐसा करते हुए उन्होने जिस जागरूकता का परिचय दिया उसका नितान्त अभाव अपने परिवेश के प्रति उदासीन रीतिकालीन कवियो मे देखा जा सकता है। भारतेन्दु के इस प्रयास से तत्कालीन लेखको को दिशा और दृष्टि मिली है। प० जगन्नाथदास रत्नाकर ने पोप के निबन्ध का 'समालोचनादर्श' नाम से बरवै छन्द मे अनुवाद किया। इस प्रकार अनुवाद कार्य की इस युग में धूम मच गयी । इस तथ्य मे आज कौन प्रबुद्ध व्यक्ति असहमति व्यक्त कर सकता है कि इन जागरूक रचनाकारो ने नया युग ही ला दिया ।

इस प्रकार अनुवादक की स्वभाषा और स्वसस्कृति के प्रति निष्ठा उसे अत्यन्त गुरु-गंभीर दायित्व मे डाल देती है। जो अन्य भाषाओ मे है, उसे अपनी भाषा मे ले आने तथा जो अपनी भाषा मे है उसे अन्य भाषाओ को मुक्तहस्त से देने और प्रसारित करने की लालसा अनुवादक की आत्म-सजगता का प्रतीक है, आत्म-विस्तार का प्रतीक है, परतन्त्रता से मुक्ति की कामना का प्रतीक है, स्वभाषा-विस्तार और स्वभाषा मे चिन्तन की आकाक्षा का प्रतीक है।

जहां एक ओर अनुवाद से भाषा का विस्तार होता है वहा दूसरी ओर उसका स्रोत-भाषा (Source language) की अनुगामिनी बन जाने का खतरा भी रहता है। यह खतरा हिन्दी मे आज महसूस किया जा रहा है, किन्तु यह खतरा अपने आप मे आत्यन्तिक नही है। इसकी सम्भावना तभी होती है, जब हम अपनी भाषा मे सोचना बन्द कर देते है और दूसरी भाषा के समानार्थक शब्दो (Equivalents) को खोजने और गढने मे ही अपनी शक्ति लगा देते है। समकक्ष शब्द न मिल पाने पर यह मान लेते है कि भाषा मे अमुक या उस भाव को व्यक्त करने की क्षमता ही नही है किंतु कोई भी भाषा इतनी दरिद्र नही होती कि अपने

बोलने-सोचने वाले के भावों-विचारों, भंगिमाओं और अभिव्यक्तियों को वहन करने में अक्षम हो। प्रश्न तो यह उठता है कि हम भाषा से कितना मांगते हैं। हम जिस भाव से भाषा से जितना मांगते है, वह उतना ही देती है। संस्कृत में इसीलिए वाणी को 'कामधेनु' कहा गया है और कवि अज्ञेय उसे 'कल्पवृक्ष' कहते हैं।

सच तो यह है कि अनुवाद के माध्यम से भाषा समृद्ध होती है। नये भावो, नये विषयो, नये विचारो और नयी अभिव्यक्ति-पद्धतियो को व्यक्त करने के प्रयत्न से भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता का विस्तार होता है, उसका शब्द-भण्डार विस्तृत होता है। नये-नये विषयो का समावेश होने पर उनके समकक्ष खोजे जाते है, नये शब्द निर्मित (Coin) किए जाते है तथा अन्य भाषाओं के शब्द ज्यों के त्यों या थोडे-बहुत हेर-फेर या परिवर्तन के साथ ग्रहण कर लिये जाते है। जैसे अंग्रेजी 'Hour' के लिए हिन्दी में 'घण्टा' हमारे पास मौजूद था, और 'Minute' को हमने 'मिनट' के रूप मे ज्यो का त्यो ले लिया 'Tragedy' और 'Comedy' के लिए हमने क्रमश 'त्रासदी' और 'कामदी' रखा।

तकनीकी प्रगति एक दुधारी तलवार है। परमाणु-ऊर्जा, राकेट, दूरदर्शन आदि विश्व-शान्ति एवं कल्याण के माध्यम भी हो सकते है और युद्ध के अस्त्र भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि कौन नियन्ता है और कौन नियन्त्रित। शक्ति से पूर्ण कठोर व्यक्ति या मानवीय विचारो और कार्यो मे संलग्न व्यक्ति अनुवादक को उन लोगो की श्रेणी मे रखते हैं जो विचारो को भाषा के रूप मे पुनर्प्रस्तुतीकरण देते है। साहित्यकारो, राजनीतिज्ञो, विचारको, दार्शनिको, वैज्ञानिको के कार्यो-विचारों को अपने देश की भाषा मे अन्तरित करते हैं। विश्व साहित्य के सृजन मे योगदान देते हैं और किसी हद तक अनुवाद की भूमिका से विचारो को जगाते है।

अनुवादक का स्थान साहित्य के सर्जक की भांति है, जिसकी सहायता के बिना व्यापक मानवीय संस्कृति की परिकल्पना ही सम्भव नहीं होती है। इस बात पर जोर देने की अपेक्षा नही है कि वैज्ञानिक और पाण्डित्यपूर्ण कृतियो के अनुवादक व्याख्याकार, कोशकार तथा भाषाविद् सभी साहित्यिक अनुवादो के सहयोगी है। विभिन्न ज्ञान-क्षेत्रो के माध्यम से हमारे उद्देश्यो को प्राप्त करने मे सहायता करते है। क्योंकि सभी का एक ही निर्दिष्ट लक्ष्य है।

आज वैज्ञानिक जानकारी ही सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रयोगो का आदि और अन्त है। उसका तुरन्त प्रचार ही ठोस अनुसधान का पूरक है। दोनों ही प्रभावपूर्ण अनुसन्धान के अनिवार्य अवयव है। इस प्रकार अनुवादक सम्पूर्ण अनुसन्धान-प्रक्रिया के दुर्निवार अंग है। उन्हें व्यक्तिगत तौर पर लगातार अपने-अपने -सम्बन्धी प्रत्ययो के विस्तार के लिए रहना चाहिए ताकि वे

आधुनिक विज्ञान एवं टेक्नॉलाजी की आवश्यकताओं की गति के साथ-साथ आगे बढ सकें तथा उसका पूरा साथ दे सके।

दिन-प्रतिदिन आधुनिक ससार ने एक बड़ी आवश्यकता यह भी दृष्टिगत होने लगी है कि हमे दुनिया की क्लासिक पद्धतियो-प्रविधियो की प्रामाणिक जानकारी हो। आरम्भ में तो कुछ लोग क्लासिको की जानकारी से डरते थे कि वे हमारे ऊपर 'हावी' न हो जाए और ऐसी स्थिति में उनके अनुकरण से हमारी मौलिकता ही खतरे मे न पड़ जाए। किन्तु आज इस 'मिथ' का खण्डन हो गया है और क्लासिको तथा क्लासिक चीजों की जानकारी का महत्त्व बढ रहा है। यह भी ध्यान से सोचे तो अनुवाद के द्वारा ही ज्यादा बेहतर हो सकता है।

अनुवाद के प्रति सजगता बौद्धिक जागरूकता का प्रतीक है। हमारे यहा तो बड़ा दुर्भाग्य यह भी रहा है कि हमने अनुवाद और अनुवादक को ठीक से महत्त्व नही दिया। उसके महत्त्वपूर्ण कार्य को समझने मे भी प्राय' भूल होती रही है। अनुवाद-कार्य को सदैव दूसरी श्रेणी का कार्य समझा-समझाया गया। जिसका सर्वाधिक बुरा परिणाम तो यही हुआ है कि अनुवादक का मनोबल गिरा है। विषय के जानकारो मे इस कार्य के प्रति थोड़ी-बहुत हिचक रही है और श्रेष्ठ प्रतिभाओं के सस्पर्श मे अनुवाद-कला काफी समय तक वंचित रही है। विचार-आदोलनो, ज्ञान की प्रवृत्तियों मे आज विश्वभर मे अन्तर्विद्याश्रयी सम्बन्धो को लाने की आवश्यकता और समस्या है। जिसके लिए अनुवाद से समर्थ माध्यम अभी मानव के पास शायद दूसरा नही है।

आधुनिक ससार मे तुलनात्मक अध्ययन के लिए अनुवाद की आवश्यकता से कौन इनकार कर सकता है। दो भाषाओ के साहित्य, विचारों तथा भाषा-शास्त्र सम्बन्धी तुलना से मानव-मनोविज्ञान के अनेक अज्ञात तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया जा सकता है क्योंकि अलग-अलग अनुशासनो मे कार्य करता हुआ भी मानव-मन एक है।

किसी भी विदेशी भाषा का अध्ययन तो हम अनुवाद के माध्यम से ही कर सकते है। यदि यह माध्यम न हो तो मानव-सेतु ही टूटने की प्रक्रिया मे दृष्टिगत हो। इस प्रकार विदेशी भाषा की बुनियादी शिक्षा आरम्भ मे अनुवाद के माध्यम से ही दी जाती है और उसी के द्वारा हम फ्रेंच, चीनी, रूसी, जर्मन आदि भाषाओ को सीखते है, उन भाषाओ के भाषा-विज्ञान, भाषा-शास्त्र एवं साहित्य से परिचय स्थापित कर पाते है। आज के विश्व मे अनुवाद की केन्द्रीय स्थिति है। विश्व-विद्यालयो मे विदेशी भाषा विभाग खुल जाने से इस स्थिति मे और भी शक्ति पैदा

उपस्थिति का तात्पर्य होगा—विज्ञान परम्परा एक स्वनिर्मित कटघरे मे घिर जाएगी। उसे इस कटघरे से बाहर निकालने से वचित रखने पर सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान परम्परा एक धीमी श्रान्ति या अपनी ही ऊब के कारण समाप्त हो जाएगी। विशेष रूप से आधुनिक युग में जहां विश्व-साहित्य अनुवादको की गुणवत्ता के माध्यम से पुनर्जीवन या नवीन जीवन की शक्ति को प्रदर्शित करता है। कभी-कभार तो यह केवल उन्ही के प्रयत्नो के कारण जीवित रह पाता है। हम सभी भली-भाति जानते है कि कोई भी संस्कृति तब तक जीवित रहती है जब तक वह परिवर्तन की चुनौती को भली-भाति स्वीकार करती है।

□ □

